RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / भोपाल / 261 / 2015-17 प्रकाशन तिथि 25 दिसम्बर 2015

चकमक

बाल विज्ञान पत्रिका जनवरी 2016

खेतों में रंग

पेड़ों में चिड़ियों के शोरों से है
खेतों में मोर रंग मोरों से है

बाँसों में बाँस रंग बाँसों से है
काँसों में काँस रंग काँसों है

(पूरी कविता पेज **41** पर)

मूल्य ₹ 50

चकमक कविता कार्ड

पढ़ो और फिर चाहो तो अपने दोस्त को
इसी कार्ड के दूसरी तरफ एक चिट्ठी लिखकर भेज दो।

कविता कार्ड के इस गुच्छे में हैं बारह कविताएँ।
12 कार्डों की कीमत है पचास रुपए।

इन्हें मँगाने के लिए तुम चकमक के पते पर लिख सकते हो।
या हमें फोन कर सकते हो। या चाहो तो सीधे ऑनलाइन मँगा लो –
http://www.eklavya.in/pitara/chakmak_kavita_cards

बाल विज्ञान पत्रिका

चकमक

अंक 352 जनवरी 2016

इस अंक में

4 मोर डूँगरी - सुनीता

9 बात उड़ चली जाती थी - लाल्टू

10 प्यारे भाई रामसहाय - स्वयंप्रकाश

12 सोफी की दुनिया - जॉस्टीन गार्डनर

15 इमली - इब्बार रब्बी

16 एक नदी बहुत अकेली

18 क्लॉद मोने का चित्र बनाने का ढँग - उदयन वाजपेयी

21 बोली रंगोली

25 पृथ्वी कब बनी थी? - सुशील जोशी

28 पत्थर का शोरबा और दूसरे किस्सागो पत्थर - दिलीप चिंचालकर

31 अजब फूल

32 मेरा पन्ना

36 गतिविधि - निम्बू से टॉयलेट-क्लीनर

37 माथापच्ची व पहेली

38 सारस और सियार - प्रभात

42 बाज़ार लोकगीत

44 हाजी नाजी - स्वयंप्रकाश

46 एक टिबुकली एक ततैया - जयेश, अनूप देवधर

47 चित्रपहेली

48 हमने पकाई है एक डायरी...

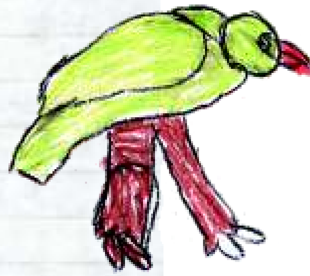

- निखिल साहू, चौथी, हबीबिया स्कूल, भोपाल

नया वर्ष मुबारक हो!

- गुँजन अर्थवानी, दस वर्ष, शारदा विद्या मन्दिर, भोपाल

चकमक के दिसम्बर अंक में प्रकाशित पाब्लो नेरूदा की कविता का अनुवाद अरविन्द गुप्ता ने किया था। भूलवश उनका नाम छूट गया था।

आवरण चित्र
स्वाति गुप्ता

हाशिए के चित्र
मयूख घोष

डिज़ाइन
दिलीप चिंचालकर

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सहायक सम्पादक
कविता तिवारी

विशेष सहयोग
पूजा सिंह

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

वितरण
सोमेश दास

सहयोग
वरुण ग्रोवर
प्रभात
मिहिर
कमलेश यादव

विप्रो एप्लाइंग थॉट इन स्कूल्स के वित्तीय सहयोग से विकसित

एक प्रति :	50.00
वार्षिक :	500.00
तीन साल :	1350.00
आजीवन :	6000.00

सभी डाक खर्च हम देंगे।

चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं।
एकलव्य भोपाल के खाते में ऑनलाइन जमा करने के लिए विवरण-
बैंक का नाम व पता - स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, महावीर नगर, भोपाल
खाता नम्बर - 10107770248
IFSC कोड - SBIN0003867
कृपया खाते में राशि डालने के बाद इसकी पूरी जानकारी accounts.pitara@eklavya.in पर ज़रूर दें।

एकलव्य

ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. 462 016, फोनः (0755) 4252927, 2550976, 2671017
फैक्सः (0755) 2551108, e mail - chakmak@eklavya.in, e mail - circulation@eklavya.in, www.chakmak.eklavya.in, www.eklavya.in

मोर डूँगरी

कथा और चित्र - सुनीता

मोर डूँगरी घने जंगल के बीच बसा एक सुन्दर गाँव था। जंगल के मोर देर शाम गाँव की पहाड़ी पर आकर बैठते थे। वे रात भर वहीं रहते, चाँद-तारों का उगना और छिपना देखते। आसपास के ऊँचे पेड़ों के झुरमुटों में जाकर सो जाते। भोर होने पर वे गाँव के घरों में चले जाते। छप्परों पर जाकर बैठ जाते। दीवारों पर टहलते। घरों के आँगन में सूखता बाजरा, मक्का और दालें चुगते। नीमों से लटके छीकों से पानी पीते। पशुओं के बाड़ों में मोर नाचते। मोरनी नाचती नहीं पर मोर के नाच

को निहारती। मोरनी पशु बाड़े में अपने अण्डे देती। मोर-मोरनी के इधर-उधर चले जाने पर साँप उनके अण्डों के आसपास मँडराते। मोर साँप को पकड़कर दूर ले जाते। अण्डों से बच्चे निकल आते। बच्चे मोरनी के पीछे-पीछे घूमते। मोरनी और बच्चे घूरों पर खाना ढूँढते। मोरनी के बच्चे बिल्ली के बच्चों की तरह बोलते।

गर्मियों में मोर बादलों को पुकारते। बादलों के बरसने पर मोर खुशी से नाचते। लोग दूर खड़े होकर उनका नाच देखते। सर्दियों में मोर खेतों में लाल मिर्चियाँ खाते। अब वे अपने पंख निकालना शुरू कर देते। चाँद पंखों को निकालते। धूप और कटार पंखों को भी। बच्चे मोर पंखों को बीनकर घर ले आते। घरों के छप्पर से टाँगकर जमा करते रहते। लड़कियाँ मोर पंख बाँधकर नाचतीं। फिर लड़के भी मोर पंख बाँधकर नाचने लगते। किसान उनके पंखों से गण्डे बनाकर गाय को सजाते। एक दिन सरकार ने मोर डूँगरी गाँव को जंगल से हटा देने का आदेश दिया। मोर डूँगरी उजड़ गया।

गाँव को जंगल से बाहर जाकर बसना पड़ा। लोगों ने घर तो बना लिए मगर गाँव में बाघों की आवाज़ें नहीं...कूदते हिरन नहीं....और मोर भी नहीं...। पुरुष याद करके रह जाते।

और औरतें...वे घर की दीवारों पर जंगल के चित्र बनाती रहतीं। उन्होंने दीवारों पर जंगल के माँडने माँडे। बाघ, हिरन, मोर और ....। चाँदनी रातों में मोर चित्रों से निकलकर पेड़ों पर जा बैठते। इस आने-जाने में कभी-कभी उनकी पाँखें गिर जातीं। वे वापिस माँडने में लौटते पर उनकी एक पाँख कम होती। माँडने बनानेवाली समझ जाती और उस चित्र में एक और पाँख माँड देती।

बात उड़ चली जाती थी

लाल्टू

बात उड़ चली जाती थी
जल्दी से पकड़ उसे लाया वापस
कही जाती बात पुरानी थी
बात कही जानी थी

बात खास बात थी
बात आम बात थी
बात आम खास बात थी
बात खास आम बात थी

बात छोटी बात थी
बात बड़ी बात थी
बात छोटी बड़ी बात थी
बात बड़ी छोटी बात थी

बात उड़ने की सोचती थी
बात कही जानी थी
कही जाती बात पुरानी थी

पकड़ी गई उड़ती बात की यही कहानी थी।

चित्रः आशिका हरभंजका

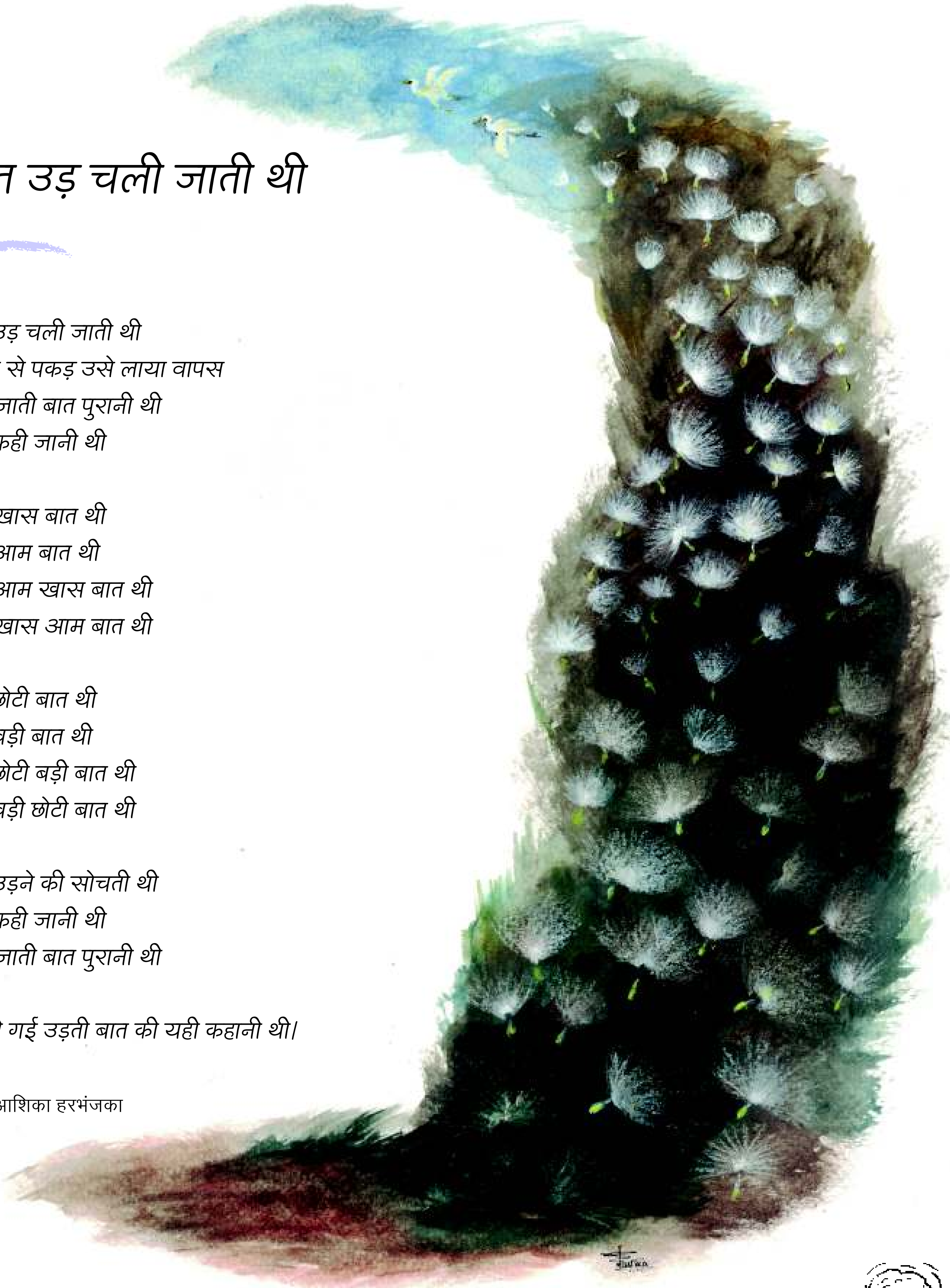

प्यारे भाई रामसहाय

स्वयं प्रकाश

हमारे स्कूल के रास्ते में एक मजमेवाला रोज़ मजमा लगाता था। यह सड़क मिलों की तरफ जाती थी। सारे मज़दूर इसी रास्ते से काम पर जाते और लौटते थे। इसलिए मज़दूरों की पाली खत्म होने का जो टाइम होता वही मजमे का टाइम होता। और वही हमारी बीच की छुट्टी का टाइम होता। इसलिए अकसर हम भी मजमा देखनेवालों की भीड़ में शामिल हो जाते और मज़ा लेते।

मजमा लगानेवाला कोई चालीस साल का एक दुबला-पतला आदमी था। वो एकदम साफ-सुथरे कपड़े पहने रहता था। उसके जूते हमेशा चमकते रहते थे। उसकी बातें बेहद दिलचस्प होती थीं। बीच-बीच में वह हाथ की सफाई भी दिखाता रहता था। कभी हाथ का सिक्का गायब कर देता, कभी ताश के पत्ते को जलाकर फिर साबुत कर देता, कभी अपना सिक्का किसी और की जेब से निकाल देता तो कभी पानी से भरा गिलास उलट देता और उसमें से एक बूँद पानी नहीं गिरता। हममें से कई ये सोचते थे कि किसी तरह मजमेवाले से दोस्ती हो जाए तो हम भी उससे जादू के दो-चार खेल सीख लें।

उसका शो कोई एक घण्टा चलता था। इस दौरान दर्शकों में से कोई हिलता तक नहीं था। लेकिन उसके बाद जब वह मंजन बेचने की कोशिश करता तो एक-एक कर सब खिसकने लगते थे। मुश्किल से दो-चार ही उसका मंजन खरीदते थे।

मजमेवाला बिना रुके बोलता। उसके कई फिकरे और मुहावरे बड़े मज़ेदार होते थे। एक बात वह रोज़ ही कहता था – सिगरेट पीकर धुआँ उड़ा दोगे, पान खाकर थूक दोगे, चाय पीकर पेशाब कर दोगे, लेकिन सेहत पर चार पैसे खर्च नहीं करोगे। यह फिकरा हमें याद हो गया था और हम आपस में भी यह बोलते रहते थे। उसी के अन्दाज़ में। इस फिकरे में दो खास बातें थीं। एक तो यह कि मजमेवाला पेशाब के "पे" को बहुत ज़ोर देकर और थोड़ा लम्बा करके बोलता था "पे—शाब" जैसे पेशाब की धार दूर तक जा रही हो। हम लोग तो "पिशाब पिशाब" करते रहते थे। दूसरे हमें यह समझ में नहीं आता था कि ये चाय का सम्बन्ध पेशाब से क्यों जोड़ रहा है? हम तो चाय पीकर पेशाब नहीं करते!

एक बार ऐसा हुआ कि चार-पाँच दिन तक मजमा नहीं लगा। हम सब सोच रहे थे कि क्या हुआ, क्या मजमेवाला कहीं बाहर चला गया है? .... या उसने मजमा लगाने के लिए कोई और जगह चुन ली है? यह बात हम स्कूल के बाहर एक पान के ठेले के पास खड़े होकर कर रहे थे। पानवाले ने हमारी बात सुन ली और अपने पान सने दाँत दिखाते हुए बोला, "मजमेवाला बीमार है।"

हमें यह सुनकर अच्छा नहीं लगा।

दूसरे दिन राधेश्याम पता करके आया कि मजमेवाला आर्य होटल के पीछे कहीं रहता है। "चलो उसे देखकर आते हैं।" उसने कहा और सब तुरन्त मान गए।

आर्य होटल एक टूटी-फूटी उजड़ी इमारत के अहाते में बना एक छोटा-सा चाय का होटल था। इसी अहाते में होटल के पीछे की तरफ टीन के छप्परवाली कुछ कोठरियाँ लाइन से बनी हुई थीं। इन्हीं में से एक में मजमेवाला रहता था। पीछे अहाते में एक कुआँ था और उसके भी पीछे खाली जगह थी जहाँ एक भैंस बँधी हुई थी।

दरवाज़ा उढ़का हुआ था। अन्दर से किसी के कराहने की आवाज़ें आ रही थीं। हमने धकेला तो दरवाज़ा खुल गया। अँधेरी कोठरी में एक खटिया पर मैला-सा पजामा और बनियान पहने मजमेवाला पड़ा हुआ था। उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी और चेहरे पर दर्द की लकीरें थीं।

हमें देखकर पहले वह चौंका, फिर मुस्कराया।

"आपको बुखार है?" राधेश्याम ने पूछा।

"सिर दुख रहा है?" मज्जू ने पूछा।

"दवा ली?" मुन्नू ने पूछा।

"आप अकेले हैं?" जक्कू ने पूछा।

"नहीं। तुम लोग हो न!" ज़रा-सा मुस्कराते हुए मजमेवाले ने कहा।

अब क्या करें हमें समझ में नहीं आ रहा था। कोठरी की हालत ठीक नहीं थी। कोनों में जाले लगे हुए थे। फर्श पर कचरा बिखरा हुआ था। कचरे में कई फटे हुए लॉटरी के टिकट भी पड़े थे। कोने में एक मटकी रखी हुई थी। वह खाली थी और उस पर धूल जमी हुई थी। हम चुपचाप खड़े रहे फिर आपस में फुसफुसाकर बातें करने लगे।

इस बीच मजमेवाले ने दीवाल की तरफ मुँह फेर लिया और आँखें बन्द कर लीं।

सप्पू सोचने लगा कि मजमेवाला हमेशा अपटूडेट और सजा-धजा कैसे नज़र आता है? दाढ़ी बनी हुई, कपड़े धुले और इस्त्री किए हुए, जूतों पर चमकदार पॉलिश। यानी खुद ही सज-धजकर मजमा लगाने जाता है। और लेकर क्या आता है? बारह आने? या आठ आने? या कभी-कभी तो वह भी नहीं!

मजमेवाले ने आँखें खोलीं। तकिए के नीचे से दुअन्नी निकालकर मुन्नू को पकड़ाई और इशारा करके कहा, "पोहे।"

मुन्नू गया और आर्य होटल से अखबार का चौथाई पेज भर पोहे ले आया। इस बीच जक्कू ने कोने में पड़ा छोटा-सा झाड़ू उठाकर सारा फर्श साफ कर दिया और नीचे-नीचे के जाले भी निकाल दिए। बालकिशन मटकी उठाकर बाहर ले गया और उसे रगड़-रगड़कर धोकर कुएँ से पानी भर लाया।

पोहों के साथ उनकी खुशबू भी भीतर आई। पोहे में हरी मिर्च, हरा धनिया, बारीक कटी प्याज़ और ऊपर से डाली गई सेव भी थी। ज़रूर नीबू भी निचोड़ा हुआ होगा। उसकी खुशबू किसी की भी भूख को एकदम से भड़का सकती थी।

(शेष भाग पेज 30 पर)

चित्रः अतनु राय

अगर ईश्वर है...

जॉस्टीन गार्डनर

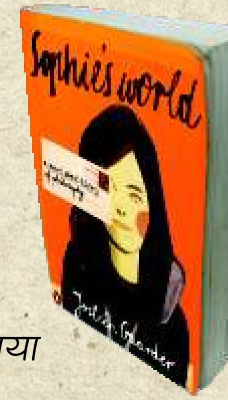

सोफीज़ वर्ल्ड
सोफी की दुनिया

एक नॉर्वेजी लड़की सोफी को अपने डाक के डिब्बे में किसी अनजान व्यक्ति के लिखे दो खत मिलते हैं। इनमें दो ऐसे सवाल हैं जो उसकी दुनिया ही बदल देते हैं। वो उसे पिछले 3000 साल के एक दिलचस्प सफर पे ले जाते हैं जहाँ अलग-अलग समय में दार्शनिकों द्वारा उठाए बुनियादी सवाल हैं। पेश है जॉस्टीन गार्डनर की किताब *सोफीज़ वर्ल्ड* के सम्पादित अंश...

स्कूल में सोफी का मन आज किसी चीज़ में नहीं लग रहा था। यहाँ तो हमेशा फालतू की चीज़ों पर बहस होती रहती है। इंसान होने का मतलब क्या है? यह दुनिया क्या है? कहाँ से जन्मी है? कोई इन पर क्यों बात नहीं करता? सब रटी-रटाई, रोज़मर्रा की बातों में लगे रहते हैं। क्यों इनको समझ नहीं आता कि संज्ञा-सर्वनाम को रटने से तो बेहतर है इन पर बात करना..

स्कूल से लौटते ही सोफी ने डाक देखी। वो जानती थी कि उसके नाम का लिफाफा वहाँ ज़रूर होगा। और वो था भी। उसने फटाफट उसे खोला। इस बार चिट्ठी बहुत लम्बी थी...

दर्शन (फिलॉस्फी) यानी क्या?

प्रिय सोफी,

लोगों की बड़ी अलग-अलग दिलचस्पियाँ होती हैं। कोई सिक्के जमा करता है, कोई डाक टिकट। कोई अपनी पूरी ज़िन्दगी किसी खेल को नज़र कर देता है। किसी को पढ़ना अच्छा लगता है। पढ़ने में भी कोई अखबार, कोई उपन्यास, कोई साहित्य, तो कोई पशु-पक्षियों, चाँद-सितारों की किताबों में डूबा रहता है। पर क्या किसी चीज़ में सभी की एक बराबर दिलचस्पी नहीं हो सकती? सभी की... दुनिया के किसी भी कोने में रहनेवाले की..

हाँ, प्यारी सोफी। हैं कुछ ऐसे सवाल जिनमें सभी की दिलचस्पी होनी ही चाहिए। इन्हीं पर बात करें...

अच्छा, एक ऐसी चीज़ का नाम बताओ जो तुम्हें सबसे ज़रूरी लगती है। ज़ाहिर है इसके कई जवाब हो सकते हैं। जिसे बहुत भूख लगी हो वो कहेगा – खाना, ठण्ड से ठिठुरता बन्दा बोलेगा – गर्माहट। अकेला व्यक्ति कहेगा – साथ।

पर फौरी ज़रूरत की इन चीज़ों के मिल जाने के बाद भी क्या कोई कमी बनी रहेगी? यह दार्शनिकों के सोचने का तरीका है। "हम यहाँ क्यों है?" पर सोचना डाक टिकिट जमा करने जैसी दिलचस्पी जैसा नहीं है। यह सवाल तब से पूछा जा रहा है जब से इस ग्रह में इंसान रहने लगा है। यह ब्रह्माण्ड, पृथ्वी कहाँ से आए? इन पर जीवन कहाँ से आया?...ये बहुत बड़े और ज़रूरी सवाल हैं...। पिछले ऑलम्पिक में सबसे ज़्यादा गोल्ड मैडल किसने जीते, जैसे सवालों से ज़्यादा ज़रूरी।

दर्शन यानी फिलॉस्फी को समझने का सबसे आसान तरीका है कुछ दार्शनिक सवाल पूछना।

यह दुनिया कैसी बनी? जो होता है उसके पीछे क्या कोई मकसद होता है? क्या मरने के बाद जीवन है? इन सवालों के जवाब कैसे पाए जा सकते हैं? क्या जीने का कोई तरीका होना चाहिए?

वैसे ऐसे सवाल गिनती में बहुत ज़्यादा नहीं हैं। सदियों से इन्हें पूछा जा रहा है। इनके अलग-अलग कई जवाब मिले भी हैं। असल में इनके जवाब पाने से आसान है इनका पूछा जाना।

ज़रूरी है कि हर आदमी इन सवालों के अपने खुद के जवाब खोजे। ईश्वर है कि नहीं है, मृत्यु के बाद जीवन है कि नहीं है – इनके पके-पकाए जवाब किसी ग्रंथ में नहीं मिल सकते। अलबत्ता, हमसे पहले के लोगों ने इनके बारे में क्या कहा है, सोचा है उसे पढ़कर हमें अपने जवाब पाने में मदद ज़रूर मिल सकती है।

दो हज़ार से ज़्यादा साल पहले युनान में एक दार्शनिक रहते थे। उनका कहना था कि दर्शनशास्त्र की जड़ें आदमी के सोचने में हैं। उन्हें ये दुनिया इतनी अद्भुत, अजूबी लगती कि ढेरों सवाल उनके ज़ेहन में कुलबुलाते रहते।

जादूगर देखा है ना तुमने! वो जब "कुछ नहीं" से एक सफेद खरगोश निकाल देता है तो हम कितने हैरान रह जाते हैं! यह जानने के बावजूद कि उसने कोई न कोई तिकड़म ज़रूर लड़ाई है। हम जानने को उतावले हो जाते हैं कि उसने वो किया कैसे। बहुत से लोग इस दुनिया में घट रही सभी चीज़ों को इसी हैरत से देखते हैं। जादू और इस दुनिया में बस इतना ही फर्क है कि यहाँ हम खुद खाली टोप से निकाले गए खरगोश हैं। मगर हम जानते हैं कि हम किसी खेल का हिस्सा बने हैं जबकि खरगोश इस बात से कतई बेखबर है।

सुन रही हो ना सोफी....

सोफी को याद नहीं कि चिट्ठी पढ़ते हुए उसने कहीं साँस भी ली हो। उसने घड़ी देखी। माँ के आने में कम से कम दो घण्टे थे। वो क्या करे...? किस से बात करे?...कोई और तो चिट्ठी नहीं आ गई इस बीच...

वो डाक के डिब्बे की तरफ दौड़ी। वहाँ एक भूरा लिफाफा उसके इन्तज़ार में था। उसने खोला और पढ़ने लगी...

चित्रः सुजाशा दासगुप्ता

चित्रः शिवांगी सिंह

मैंने पिछले खत में भी लिखा था कि अच्छा दार्शनिक वही है जो हर चीज़ को पहली बार देखे की नज़र से देखता है। वो उसे हैरान करती है। उसे जानने की उतावली होती है उसमें। बिलकुल बच्चों की तरह। बच्चे हर चीज़ से चमत्कृत हो जाते हैं। वो उसे पकड़ना, छूना चाहते हैं। कुत्ता दिखा नहीं कि वो "भौ भौ भौ भौ" कह उछलने लगते हैं। कुत्ता चाहे कितनी ही बार दिख जाए उनका खुशी से बाँहें फैलाकर "भौ भौ" करना कम नहीं होता। और हम बड़े और समझदार जो हज़ारों बार कुत्ता देख चुके हैं सोचते हैं इसमें इतना खुश होने, उछलनेवाली क्या बात है! कुत्ता ही तो है! और बोलते हैं..."हाँ हाँ कुत्ता है।"

धीरे-धीरे वो समय आता है जब कुत्ता बच्चे की बगल से गुज़र जाता है और वो कुछ नहीं बोलता। अच्छी तरह से बोल पाने या चीज़ों पर सोच पाने से बहुत पहले बच्चों के लिए यह दुनिया एक आदत बन जाती है।

इस पर अफसोस ही किया जा सकता है बस...। सोफी तुम इन बड़ों जैसी मत बन जाना जिन्हें यह दुनिया हैरान नहीं कर जाती।

चलो, थोड़ी देर और इसी पर सोचते हैं...

मान लो कि एक सुबह माँ, पापा और नन्हा थॉमस नाश्ते की मेज़ पर बैठे हैं। माँ जब रसोई में कुछ लेने जाती हैं तो पापा उड़ने लगते हैं। वो हवा में तैरते हुए नीचे आते हैं फिर मेज़ के ऊपर उड़ने लगते हैं। थॉमस आराम से बैठा उन्हें देखता रहता है। शायद वो बोल भी दे कि "पापा उड़ रहे हैं।" उसे यह बात अजूबा लग सकती है, पर ऐसी तो कितनी ही चीज़ें हैं जो उसे अजूबा लगती हैं। एक और सही।

पर माँ...। माँ जब सुनती है कि "पापा उड़ रहे हैं..." वो चीख मारकर गिर पड़ती है। हाथ में पकड़ी काँच की बरनी गिरकर चकनाचूर हो जाती है। क्या पता हालत इतनी बिगड़ जाए कि डॉक्टर बुलवाना पड़े!

सोफी, इन दोनों के रिएक्शन इतने अलग क्यों थे!

असल में इसकी वजह है आदत। माँ जानती है कि इंसान उड़ नहीं सकते पर थॉमस तो अभी जान रहा है। जब हम बड़े हो रहे होते हैं तो हमें यह दुनिया बड़ी जादुई लगती है। पर हम सोचना शुरू करें उससे बहुत पहले हम इस बेहद हसीन चीज़ को भूल जाते हैं।

हमें दुनिया की बहुत जल्दी आदत पड़ जाती है, दार्शनिकों को नहीं। उनमें हमेशा बच्चों की-सी उत्सुकता बनी रहती है।

सोफी यही बात मैं तुममें होता देखना चाहता हूँ। और इसीलिए तुम्हें ये खत लिखता रहा हूँ। लिखता रहूँगा भी।

उस दोपहर जब माँ घर आईं तो सोफी सकते में थी। वो किताबें सामने खोले बैठी थी पर चिट्ठी की बातें उसके दिमाग में घूम रही थीं।

इत्ता ज़्यादा तो उसने कभी नहीं सोचा था। उसे लगा जैसे दुनिया को वो पहली बार देख रही हो। चिट्ठीवाले ने जैसे उसे बचा लिया। वरना वो तो रोज़ एक जैसी छोटी-छोटी-सी मामूली चीज़ों में बेवजह जी रही थी।

शाम को माँ जब घर आईं तो उसने उन्हें खींचकर कुर्सी पर बिठाया और बोली, "माँ तुम्हें नहीं लगता कि इस दुनिया में हमारा होना, साँस लेना बहुत बड़ी बात है...।"

माँ हैरान रह गईं। फिर बोली, "हाँ,...कभी-कभी लगता तो है।"

"कभी-कभी? पर क्या इस दुनिया का होना, इसमें हमारा होना हैरान नहीं कर जाता तुम्हें?"

"सोफी बन्द करो ये फालतू की बकवास।" माँ झल्लाकर उठीं और रसोई में चली गईं। आलू उबालने के लिए जैसे ही उन्होंने बरतन रखा उन्हें एक ख्याल आया। वो हड़बड़ाती हुई आईं और सोफी को एक कुर्सी पर लगभग खींचती हुई ले गईं। "सोफी, बेटा सच बताओ तुमने कोई नशा-वशा तो नहीं किया ना! सच बोलो..।" वो बेहद घबराई हुई थीं।

सोफी ज़ोर-से हँसने को हुई। उसे चिट्ठी की बात याद हो आई – बड़ों ने किस आसानी से खुद को जीवन की नाकुछ-सी चीज़ों के हवाले कर दिया है – हमेशा के लिए...

इमली :
हिन्दुस्तान का खजूर

शब्द यात्राः इब्बार रब्बी

उन दिनों घर से स्कूल जाते समय रास्ते में दोनों ओर इमली के पेड़ होते थे। हम इन पर या तो चढ़कर इमली खाते या नीचे से ही पत्थर फेंककर इन्हें गिराने की कोशिश करते। एकाध इमली हाथ लगती तो कभी मिल-बाँटकर या कभी छीन-झपटकर खाते। देर से स्कूल पहुँचने पर जब डाँट पड़ती तो थोड़ी देर को इमली का खट-मिट्टा स्वाद और चटखारे सब गायब हो जाते। पर शाम को फिर वही होता। ये सब हमारे बचपन की यादें हैं। आजकल बड़े महानगरों में कम इमली के पेड़ हैं, कम बच्चे पैदल स्कूल जाते हैं। इसलिए इमली बच्चों के जीवन से गायब ही रही है।

इमली के लिए संस्कृत में "अम्लिका" या "आमलिका" शब्द है। संस्कृत का "अम्लिका" तेलुगु में जस का तस "आम्लिका" में मौजूद है। वहाँ सिर्फ "अ" की ध्वनि "आ" में बदल गई है। मलयालम में यह सरल होकर "आम्लम" हो गई। यहाँ "इ" की ध्वनि गायब हो गई। मलयालम में इसे "वालमपुलि" या "पुली" भी कहते हैं। तमिल में भी इमली का नाम "पुलि" है। इमली का अगला रूप "आम्बीली" बना, जो बांग्ला और गुजराती में सुरक्षित है। इन दोनों भाषाओं में इमली को "आँवली" कहते हैं। उड़िया और कन्नड़ भाषाओं में यह शब्द संस्कृत शब्द से बहुत दूर है। उड़िया में इसे "तेंतुली" और कन्नड़ में "चितचिंच" और "हुमसेमरा" कहते हैं। "तेंतुली" बोलने पर मुँह इमली के खट-मिट्ठे स्वाद से भर जाता है।

भारत से इमली अरब गई। इस तथ्य को अरबी भाषा ने सुरक्षित रखा। अरबी में इसे "तमार-उल-हिन्द" कहते हैं जिस का अर्थ है "भारत का खजूर"। बाद में बीच का "उल" गायब हो गया और केवल "तमरहिन्द" रह गया। यानी हिन्दुस्तान से आई तमर। अरबी में इसका अर्थ है पकी इमली या हिन्दुस्तानी सूखा खजूर।

सन् 1563 में पुर्तगाली लेखक गार्सिया ने लिखा था – मलाबार (केरल) में इसे "पुली" कहते हैं और गुजरात में "आम्बीली"। भारत में हर जगह इसका यही नाम है। अरब इसे "तमारिन्दी" कहते हैं। कॉस्टीलियन इसे खजूर कहते हैं। "तमारिन्दी" भारत का खजूर है। इस में गुठली होती है। इसके अलावा फल और पेड़ की खजूर से कोई समानता नहीं है पर अरब के लोग "खजूर" के अलावा अन्य किसी बेहतर फल की कल्पना नहीं कर सकते इसलिए उन्होंने इसे खजूर कहा।

(शेष भाग पेज 43 पर)

चित्रः दिलीप चिंचालकर

एक नदी बहुत अकेली

एक नदी थी। बहुत अकेली और रूखी। उसका कोई दोस्त नहीं था, और न ही दोस्ती करने में उसकी कोई दिलचस्पी थी। वो अपना पानी किसी से साझा नहीं करती थी – न मछलियों से, न पौधों, न दूसरे जीवों से। सालों से वो यूँ ही अकेली बह रही थी।

एक दिन एक छोटी लड़की वहाँ आई। उसके पास काँच की एक बरनी थी। उसमें एक मछली तैर रही थी। लड़की को यह शहर छोड़कर दूसरे शहर दूर जाना पड़ रहा था। इसलिए भारी मन से वो मछली को नदी में छोड़ने आई थी। जैसे ही उसने मछली को पानी में छोड़ा, मछली को नदी का अकेलापन

चित्रः दिलीप चिंचालकर

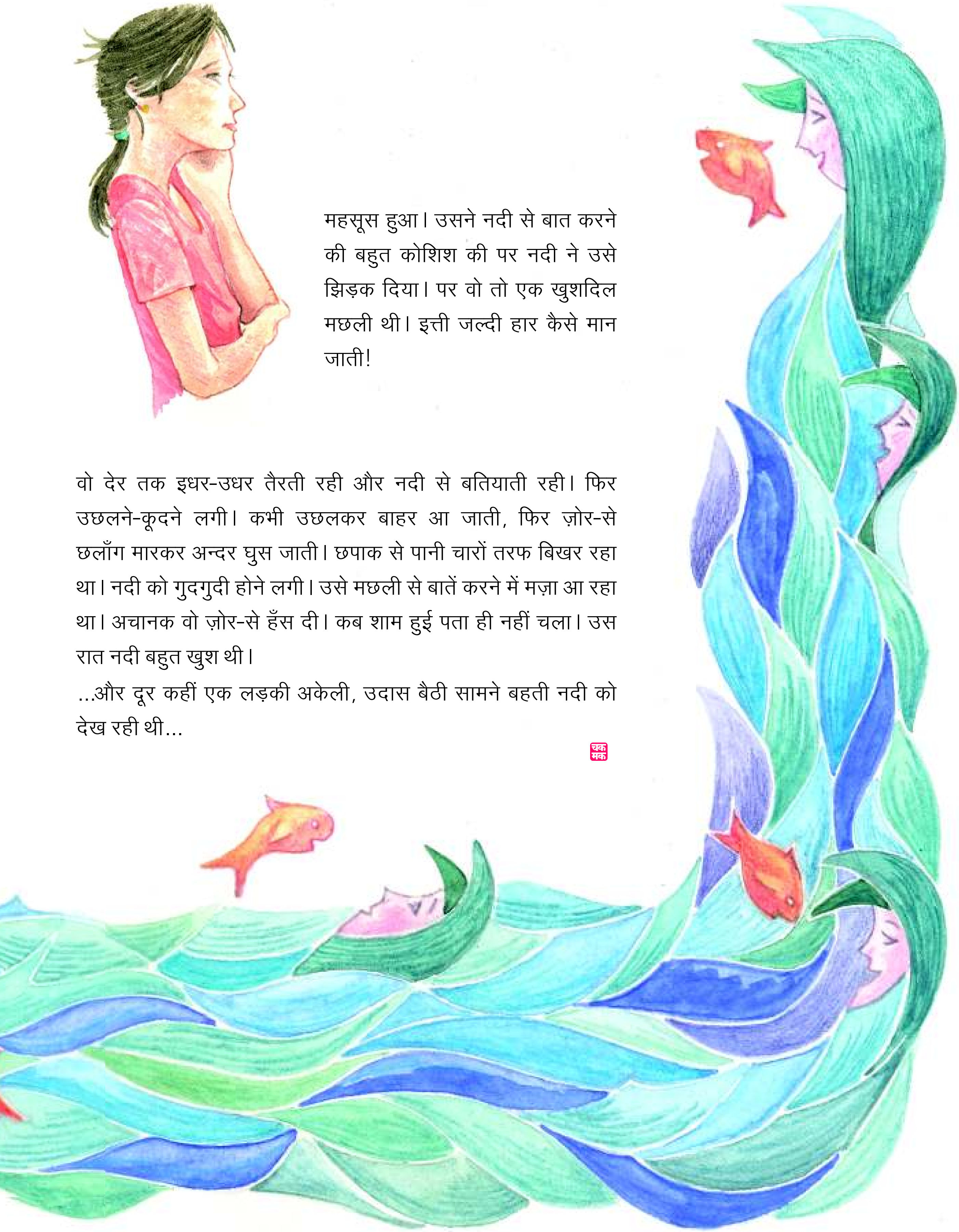

महसूस हुआ। उसने नदी से बात करने की बहुत कोशिश की पर नदी ने उसे झिड़क दिया। पर वो तो एक खुशदिल मछली थी। इत्ती जल्दी हार कैसे मान जाती!

वो देर तक इधर-उधर तैरती रही और नदी से बतियाती रही। फिर उछलने-कूदने लगी। कभी उछलकर बाहर आ जाती, फिर ज़ोर-से छलाँग मारकर अन्दर घुस जाती। छपाक से पानी चारों तरफ बिखर रहा था। नदी को गुदगुदी होने लगी। उसे मछली से बातें करने में मज़ा आ रहा था। अचानक वो ज़ोर-से हँस दी। कब शाम हुई पता ही नहीं चला। उस रात नदी बहुत खुश थी।

...और दूर कहीं एक लड़की अकेली, उदास बैठी सामने बहती नदी को देख रही थी...

उदयन वाजपेयी

क्लौद मॉने का चित्र बनाने का ढंग

कोई भी चित्र सिर्फ दृश्य नहीं दिखाता। इसका मतलब यह है कि आप चित्र में सिर्फ किताब पढ़ती लड़की, या अँधेरे में कृष्ण की ओर भागी जा रही गोपी या पहाड़ पर लगा हुआ पेड़ आदि ही नहीं देखते। आप चित्रकार की दृष्टि को भी देखते हैं। यानी आप किसी भी चित्र में चित्रकार के देखने के ढंग को भी देखते हैं। आप यह भी देखते हैं कि चित्रकार ने दुनिया को कैसे देखा है। यह बात इस हद तक सच है कि जब कोई दर्शक किसी चित्र को देखकर घर लौटता है वह अपने साथ चित्रकार के देखने के ढंग को भी लेता आता है। यही कुछ संगीत में भी होता है। जब आप कोई बेहतर संगीत सुनते हैं आप तुरन्त संगीतकार के गाने या बजाने के ढंग को अपने मन पर अंकित कर लेते हैं। अगर ऐसा नहीं होता तो आप किसी संगीत का थोड़ा-सा हिस्सा सुनकर यह कैसे बता पाते कि यह संगीत फलाँ संगीतकार का बनाया हुआ है। ऐसे ही जब आप वॉन गॉफ (वॉन गॉग) का चित्र देखते हैं और आपको यह न भी बताया गया हो कि वह किसने बनाया है, आप तुरन्त बता सकते हैं कि यह वॉन गॉफ का चित्र है।

हम समझने की कोशिश करें कि क्लौद मॉने के देखने का ढंग क्या था? हम किसी चित्र को देखकर यह कैसे कह पाएँगे कि यह क्लौद मॉने का है या किसी और का। वे पेरिस के चित्रकार थे। यह वह शहर है जहाँ कई आधुनिक चित्रकार दुनिया भर से आकर रहे। क्लॉद मॉने फ्रांसीसी ही थे और पेरिस में ही उनका बचपन बीता। आप यह कभी और किसी और जगह ज़रूर पढ़ना कि उनकी सारी ज़िन्दगी कहाँ-कहाँ कटी। वह लम्बी कहानी है पर हर कलाकार के जीवन की कहानी की तरह वह भी दिलचस्प कहानी है।

क्लौद मॉने को प्रभाववादी चित्रकार कहा जाता है। यह शब्द थोड़ा भ्रम पैदा करता है। प्रभाववादी का यह अर्थ ले लिया जाता है कि चित्रकार के मन पर जो "प्रभाव" किन्हीं दृश्यों का पड़ा, उसे ही उसने कैनवास पर बना दिया। यानी जो चित्रकार अपने मन पर पड़े "प्रभाव" को चित्र में ज्यों का त्यों उतार देता है, वह प्रभाववादी हुआ। वह समझ आधी-अधूरी है।

वॉटर लिलि

वह इसलिए कि ऐसा कोई चित्र हो नहीं सकता जो चित्रकार के मन पर पड़े प्रभाव से पूरी तरह अलग हो। इस तरह देखो तो पता लगेगा कि लगभग हर चित्रकार "प्रभाववादी" होता है। तब सिर्फ क्लौद मॉने और थोड़े-से और चित्रकारों को ही प्रभाववादी क्यों कहा जाता है? आप उनके कुछ चित्रों को देखो जिनमें उन्होंने "वॉटर लिलि" बनाए हैं। इनमें से अधिकतर चित्रों में उन्होंने लिलि के पत्तों को पानी पर तैरता दिखाया है, कहीं-कहीं कुछ चित्रों में लिलि के फूल भी दिखाई दे जाते हैं। पर कई चित्र ऐसे भी हैं जिनमें फूल नहीं हैं। वातावरण शान्त दिखाया जाता है। यह ऐसे पता चलता है कि पानी की सतह लगभग शान्त दिखाई देती है, उसमें बहुत छोटी-छोटी लहरें उठ रही हैं। यह लहरें हवा के बहुत धीरे-से बहने पर ही उठती हैं। हम अन्दाज़ लगा सकते हैं कि इस चित्र में जो दृश्य बनाया गया है, उसमें हलकी हवा बह रही है, सरोवर के चारों ओर के पेड़ (चित्र में दिखाई नहीं दे रहे) चुपचाप खड़े हैं। उनके पत्ते बीच-बीच में थोड़ा बहुत हिलते हैं। सरोवर पर दूर-दूर तक न कोई नाव चल रही है और न ही कोई बड़ी मछली पानी की सतह के ठीक नीचे तैर रही है।

ऐसा कोई चित्र हो नहीं सकता जो चित्रकार के मन पर पड़े प्रभाव से पूरी तरह अलग हो।

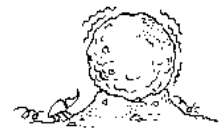

पर क्लौद मॉने के चित्र की ऐसी क्या खास बात है जिससे उन्हें पहचाना जा सके? अगर ध्यान से देखो, तुम पाओगे कि मॉने दो या दो से अधिक रंग लगाकर एक अलग ही रंग का "प्रभाव" उत्पन्न कर देते हैं। अगर उन्हें हलका नीला रंग लगाना है, वे सीधे-सीधे यह न करके, हरा रंग और सफेद रंग लगाएँगे और हलके हरे-नीले रंग का प्रभाव उत्पन्न कर देंगे।

यानी जो काम अनेक चित्रकार कैनवास पर रंग लगाने से पहले करते हैं, मॉने वही कुछ कैनवास पर करते थे। वे एक से अधिक रंग लगाकर एक ऐसे ही रंग का प्रभाव उत्पन्न कर देते थे जो दरअसल कैनवास पर होता ही नहीं था। इसलिए हम उनके चित्रों में जिन रंगों को देखते हैं, वे किन्हीं और रंगों के पास-पास आने से दिखाई भर देते हैं वहाँ होते नहीं हैं। कुछ रंगों के पास आने से इनसे अलग जिस रंग या रंगों का प्रभाव हमारे मन पर पड़ता है, वह रंग लगभग हमेशा ही किसी विशेष रंग की सूक्ष्म रंगत होती है। मॉने के अधिकाँश चित्र इन्हीं सूक्ष्म रंगतों से तैयार होते हैं इसलिए उन्हें देखकर कोमल भावनाएँ हमारे मन में उभरने लगती हैं।

मॉने उन रंगों या सूक्ष्म रंगों का प्रभाव हमारे मन पर छोड़ते हैं जो दरअसल कैनवास पर होते ही नहीं हैं। यही उनका प्रभाववाद है। यही उनकी वह पहचान है जिसके सहारे आप उनके चित्रों को बाकी सभी चित्रों से अलगा सकते हैं।

(चित्र मॉने ऑर द ट्रिम्फ ऑफ इम्प्रेशनिज़्म से साभार)

बोलीरंगोली

दो हज़ार पन्द्रह सालों के
बाद आया एक साल
तीन सौ पैंसठ दिन जीना
है अच्छे तरह से पाल

कवि गुलज़ार की इस पंक्ति पर तुम्हारे बहुत-बहुत सारे चित्र मिले। पर ज़्यादातर में वही दृश्य थे जो अक्सर किताबों या कैलेण्डरों में दिख जाते हैं। गुलज़ार साब को इनमें से सिर्फ दो चित्र पसन्द आए। इसके अलावा कुछ और चित्र हैं जो बेहतर हैं। इनके चित्रकारों को उपहार में चकमक डायरी अथवा किताबें भेजी जा रही हैं।

- पुनीत चौधरी, छठी, डीपीएस लुधियाना

बोलीरंगोली

त्विशा जैन, छठी, डीपीएस लुधियाना

दो हज़ार पन्द्रह सालों के बाद
आया एक साल
तीन सौ पैंसठ दिन जीना है
अच्छे तरह से पाल

मार्च की कविता सुनो।

अगले महीने से हमने बस एक ही दिन तो तोड़ा था
घूम के फिर आ जाता है जो मौसम हमने छोड़ा था

– शौर्य सबरवाल, तीसरी, डीपीएस पटना

- यश अग्रवाल, दसवीं, डीपीएस वाराणसी

हो सकता है बड़े तुम्हें इसके अर्थ बताएँ। उनके अर्थ सुनो। समझो।

पर चित्र अपने मन का ही बनाओ...।

कोशिश करना की तुम्हारे चित्र हमें 10 फरवरी तक मिल जाएँ। चित्र के साथ अपना पता, कक्षा और फोन नम्बर ज़रूर लिखना।

पता है -

- अनिसा, दस साल, आनन्द निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल, भोपाल

एकलव्य
ई-10 शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी
शिवाजी नगर
भोपाल - 462016
फोन - 09425010115
चाहो तो ई मेल कर दो **chakmak@eklavya.in**

- जैअवलनूर सिंह, चौथी, डीपीएस लुधियाना

बोलीरंगोली

फरवरी महीने में गुलज़ार साब
तुम्हारे भेजे प्रश्नों के जवाब देंगे।
तुम उनसे जो भी पूछना चाहो हम
तक 30 जनवरी तक भिजवा देना।

- मोहम्मद कैफ, रागिनी समूह, दिगन्तर, जयपुर

- अभिनय कुमार शर्मा, छठी, मदेशिलापुर, सिवान, बिहार

दो हज़ार पन्द्रह सालों के बाद
आया एक साल
तीन सौ पैंसठ दिन जीना है
अच्छे तरह से पाल

- अक्षिता महेश्वरी, चौथी, डीपीएस लुधियाना

मार्च की कविता फिर से सुनो।

अगले महीने से हमने
बस एक ही दिन तो तोड़ा था
घूम के फिर आ जाता है
जो मौसम हमने छोड़ा था

पृथ्वी कब बनी थी?

सुशील जोशी

शायद तुमने इस बारे में सोचा नहीं होगा कि जिस पृथ्वी पर हम खेती करते हैं, कारखाने लगाते हैं, खेलते-कूदते हैं वह कितनी पुरानी है! वैसे सोचने की ज़रूरत भी नहीं लगती क्योंकि हमारे पैरों तले ज़मीन इतनी ठोस और स्थायी लगती है कि गुमान होता है कि यह तो हमेशा से ऐसी ही थी और ऐसी ही रहेगी। मगर कभी-कभी ऐसी घटनाएँ होती हैं कि लगता है कि शायद पृथ्वी उतनी ठोस और स्थायी भी नहीं है।

जैसे भूकम्प के बारे में सुनते हैं तो ज़मीन के साथ-साथ दिल भी काँप जाता है। कैसे अचानक इतनी मज़बूत दिखनेवाली ज़मीन कँपकँपाकर हिल जाती है, टूट-फूट जाती है! ऐसी ही कई घटनाओं ने लोगों को सोचने पर मजबूर कर दिया था कि पता लगाएँ कि यह पृथ्वी है कितनी पुरानी। यह सब उस समय हुआ जब लोग दूर-दूर की यात्राएँ करने लगे थे, पृथ्वी में गहरी खुदाई करने लगे थे। उससे पहले तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था कि यह पृथ्वी कितनी पुरानी है। कोई मानता था कि यह शुरू से है और आखरी तक रहेगी। कुछ लोग मानते थे कि यह 5000 साल पुरानी है।

पृथ्वी की गहराइयों की चिन्ता करनेवाले भूगर्भ वैज्ञानिकों ने पृथ्वी की अन्दरूनी रचना की खोजबीन सत्रहवीं सदी में शुरू कर दी थी। एक तो यह पता चला कि जैसे-जैसे पृथ्वी की गहराइयों में जाते हैं, हमें कई परतें मिलती हैं।

चित्रः मयूख घोष

और इन अलग-अलग परतों में जीवों की छापें (जीवाश्म) मिलती हैं। इनमें से कई जीव आजकल धरती पर नहीं पाए जाते। यानी यह लगने लगा था कि कई जीव जो पृथ्वी पर एक समय में रहते थे, आज गायब हो चुके हैं। मतलब सब कुछ शुरू से ऐसा ही नहीं है। निष्कर्ष निकाला गया कि धरती पर जीव प्रकट होते रहते हैं और गुम होते रहते हैं। यानी धरती के इतिहास के साथ-साथ जीवों का भी एक इतिहास है।

ऐसे अवलोकन लोगों को मजबूर कर रहे थे कि पृथ्वी का इतिहास पता लगाएँ। आखिर इतने सारे जीव प्रकट हुए हैं और फिर गुम भी हो गए हैं तो सोचनेवाली बात है कि ऐसा कैसे हुआ होगा! और इसमें कितना समय लगा होगा! डायनासौर कभी पृथ्वी पर रहे और फिर अचानक खत्म हो गए, ऐसा रातों-रात तो नहीं हो सकता ना?

अब भूगर्भ वैज्ञानिकों को यह तो पता चल ही गया था कि चट्टानों में जो परतें दिखती हैं वे धीरे-धीरे जमा हुई होंगी।

चित्रः दिलीप चिंचालकर

उन्होंने अनुमान लगाया कि पानी में घुली हुई मिट्टी धीरे-धीरे नीचे बैठती है। ऐसा साल-दर-साल होता रहता है। इसलिए हमें परतें नज़र आती हैं।

तो पता कैसे करें कि यह धरती कब से है! अब यह तो कर नहीं सकते कि एक बार फिर शुरुआत से शुरू करें और गिनती करें कि आजकल जैसी पृथ्वी बनने में कितने साल लगते हैं। हमें तो बस इतना पता है पृथ्वी आज कैसी है। और हम परिवर्तन के कुछ नियम, कुछ प्रक्रियाएँ जानते हैं। तो इन नियमों को लागू करके पृथ्वी की उम्र का अन्दाज़ लगाने की कोशिशें की गईं (और करते भी क्या?)। मगर इसके लिए पहले यह मानना पड़ा कि ये नियम अतीत में भी ऐसे ही लागू होते थे।

चलो यह तो पता है कि आज की पृथ्वी शुरू से ऐसी नहीं थी। धीरे-धीरे परिवर्तनों के बाद यह आज की स्थिति में आई है। हमें यह भी पता है कि परिवर्तनों के नियम क्या हैं। अब एक समस्या रह जाती है – शुरू में स्थिति कैसी थी? शुरू की स्थिति पता हो तो परिवर्तन के नियम को लागू करके हम पता कर सकते हैं कि आज की स्थिति तक पहुँचने में कितना समय लगा होगा। जैसे कोई रेलगाड़ी इस वक्त भोपाल में है। हमें पता है कि वह 60 किलोमीटर प्रति घण्टा की रफ्तार से चलती है। पता यह करना है कि वह कितने घण्टों से चल रही है। अब यदि हमें पता हो कि उसने दिल्ली से चलना शुरू किया था तो हम बता देंगे कि वह 11 घण्टे से चल रही है (क्योंकि दिल्ली से भोपाल की दूरी हमें पता है)। मगर पृथ्वी के बारे में कौन जाने किस स्टेशन से छूटी थी!

तो पृथ्वी की उम्र पता लगाने की किसी भी विधि में हमें शुरुआत की स्थिति के बारे में कुछ मानना पड़ेगा। यानी शुरुआती परिस्थिति के बारे में कोई तर्कसम्मत मान्यता लेनी होगी। फिर इस परिस्थिति में परिवर्तन का नियम लागू करके यह गणना करनी होगी कि शुरुआती परिस्थिति से चलकर हम आज की परिस्थिति तक कैसे व कितने समय में पहुँचे।

यानी पूरा दारोमदार चन्द नियमों, चन्द प्रक्रियाओं की समझ और चन्द मान्यताओं पर टिका है। यदि ये मान्यताएँ सही हैं तो सही निष्कर्ष पर पहुँचने की उम्मीद कर सकते हैं। मगर पता कैसे चलेगा कि हमने जो माना था वह सही है!

वैज्ञानिकों ने तरह-तरह से इस सवाल को सुलझाने की कोशिशें की हैं और सही-गलत जवाब तक पहुँचे हैं। हरेक वैज्ञानिक ने शुरुआत की परिस्थिति के बारे में कोई मान्यता पकड़ी, परिवर्तन के नियम को लागू किया और यह पता लगाया कि तब से आज तक की हालत में पहुँचने में कितना समय लगा होगा। मैं यहाँ दो उदाहरण दूँगा।

पहला प्रयास किया था लॉर्ड केल्विन ने 1862 में यानी आज से करीब 150 साल पहले। केल्विन ने पृथ्वी की उम्र पता करने के लिए ऊष्मा का सहारा लिया था। उन्होंने माना कि पृथ्वी और सूरज साथ-साथ ही बने थे। यानी हमारी पृथ्वी शुरुआत में उतनी ही गर्म थी जितना सूरज है और पिघली हुई अवस्था में थी। उसके बाद यह ठण्डी होने लगी। ऐसा मानने में कोई गलती तो नहीं लगती।

तो पता यह करना है कि अति-तप्त तरल स्थिति से वर्तमान स्थिति तक पहुँचने में इसे कितने साल लगे होंगे। इसकी गणना के लिए पता होना चाहिए कि पृथ्वी को ऊष्मा कहाँ-कहाँ से और कितनी मिलती है और पृथ्वी से ऊष्मा की हानि किस-किस विधि से होती है। केल्विन ने दो बातें मान ली थीं:

1. कि पृथ्वी में ऊष्मा पैदा नहीं होती। सूरज से थोड़ी-बहुत ऊष्मा आती है, बस। यानी पृथ्वी पर शुरू में जितनी ऊष्मा थी वह सिर्फ बिखरती रहती है।

2. कि पृथ्वी के केन्द्रीय भाग से सतह तक ऊष्मा का स्थानान्तरण संचालन विधि से होता है।

ये सब हिसाब-किताब करके उन्होंने निष्कर्ष निकाला था कि पृथ्वी कम से कम 2 करोड़ वर्ष पुरानी है और अधिक से अधिक 40 करोड़ वर्ष। यानी उनके अनुसार पृथ्वी की उम्र 2 से 40 करोड़ वर्ष के बीच ठहरती थी।

जल्दी ही इनकी मान्यताओं में गलती पहचान ली गई। प्रमुख गलती थी कि केल्विन ने माना था कि पृथ्वी पर ऊष्मा पैदा नहीं होती। उनके ज़माने में परमाणुओं के टूटने से पैदा होने वाली ऊष्मा के बारे में पता नहीं था। जब पता चला तो गलती समझ में आई और केल्विन के आँकड़े को छोड़कर हम आगे बढ़ गए।

दूसरा प्रयास भी उतना ही रोचक है। यह प्रयास जॉन जॉली ने 1899-1900 में किया था। यह तो तुम जानते ही हो कि समुद्र का पानी खारा होता है। यह भी जानते होगे कि यह खारापन कहाँ से आता है। नहीं जानते तो बता दूँ कि समुद्र में यह खारापन नदियों के ज़रिए आता है अर्थात नदियाँ बहते-बहते रास्ते से तमाम लवण घोलती हैं और ले जाकर समुद्र में जमा कर देती हैं। फिर जब समुद्र का पानी भाप बनकर उड़ता है तो लवण वहीं समुद्र में रह जाते हैं और शुद्ध पानी धरती पर बरसता है और एक बार फिर नदियों में पहुँच जाता है। तो यदि हम यह पता कर लें कि आजकल नदियाँ हर साल समुद्रों में कितना लवण पहुँचाती हैं तो गणना करना मुश्किल नहीं होगा कि समुद्रों में आज जितना लवण है, वह कितने साल में पहुँचा होगा। इसमें मान्यता यह है कि शुरू में समुद्रों में लवण नहीं था। इस आधार पर जॉली ने निष्कर्ष निकाला कि समुद्र 8 से 10 करोड़ वर्ष पुराने हैं। इसका मतलब है कि पृथ्वी इससे तो पुरानी होगी क्योंकि समुद्र तो तब बने होंगे जब धरती ठण्डी हो गई होगी। आगे चलकर समुद्रों की लवणीयता सम्बन्धी मान्यता गलत साबित हुई।

शायद तुम भी कई ऐसी चीज़ों के बारे में सोच सकते हो जिनके आधार पर पृथ्वी की उम्र का पता लग सके। यदि शुरू से ही यह चिन्ता न करो कि वह तरीका सही रहेगा या गलत, तो काम आसान हो जाएगा। क्या तुम कोई तरीका सोचकर बता सकते हो? वैज्ञानिकों ने भी तो यही किया था – कोई बात सोची, कुछ मान्यताएँ मानीं और ठोंक दिया एक आँकड़ा पृथ्वी के बर्थडे का। बस उन्होंने इतना खुलापन रखा कि यदि बाकी वैज्ञानिक मिलकर कहें कि आपके तरीके में फलाँ-फलाँ खामी है, तो सुनने-समझने को तैयार रहे।

पत्थर का शोरबा और दूसरे किस्सागो पत्थर

दिलीप चिंचालकर

उस पत्थर के शोरबे में निश्चित ही कुछ अनोखा ज़ायका रहा होगा। शोरबा जिसे लाम से लौटते सिपाही ने कंजूस बुढ़िया के साथ मिलकर बनाया था। बुढ़िया की कुटिया में खाने के लिए एक दाना तक नहीं था। तब भूखे सिपाही ने पत्थर का शोरबा बनाने का सुझाव दिया। सिपाही ने पहले बुढ़िया से एक देगची और साफ पानी माँगा। फिर पत्थर को धोकर उसमें उबलने के लिए रख दिया। अब यह ज़ाहिर था कि उस शोरबे में एकाध आलू पड़ जाता, एकाध टमाटर पड़ जाता तो स्वाद सुधर जाता। जब उसने यह मन ही मन ज़ोर से कहा तो बुढ़िया ने ये चीज़ें फौरन पेश कर दीं। फिर सिपाही को लगा कि इसमें ज़रा-सा हरा धनिया, कुछ मिर्चें, एकाध गाजर डल जाता तो बेहतर होता। कहने भर की देर थी कि वे चीज़ें भी आ गईं। ऐसे ही उस शोरबे में काली मिर्च, दालचीनी, लोंग, यहाँ तक कि मक्खन तक आ मिला। आखिर में सिपाही ने पत्थर को देगची से निकाल लिया और पोंछकर अपने झोले में अवेर कर रख लिया। ब्यालू में सिपाही और बुढ़िया ने चटखारे ले-लेकर पत्थर का शोरबा खाया।

मैं इस पत्थर से चमत्कृत हूँ। इस पत्थर ने शोरबे में क्या ही चटपटा स्वाद घोला होगा। मेरे पास भी एक पत्थर है। रामगढ़-जैसलमेर के पास के इलाके से लाया हाबुड़ पत्थर। कहते हैं इसे गुनगुने दूध की मटकी में डाल कर रात भर के लिए छोड़ दो। सुबह बढ़िया दही जमा हुआ मिलेगा। शायद देश-दुनिया में ऐसे और पत्थर मिलते होंगे जिनसे कुछ न कुछ सुस्वादु बनता होगा। तभी तो जब भी मैं प्रवास कर घर लौटता हूँ, मेरे झोले से तरह-तरह के पत्थर निकलते हैं। देर-सवेर ये सभी मेरे बगीचे में अपनी एक जगह बना लेते हैं।

हमारे घर पत्थरों के आने का सिलसिला कोई साठ-सत्तर वर्ष पहले शुरू हुआ था। पिताजी कहीं भी जाते तो कुछ मीठा और कुछ पत्थर ज़रूर लाते। मेरी याद में जितना पुराना स्वाद उनके लाए सोहन हलवे का है उतनी ही पुरानी छवि कुछ पत्थरों की भी है।

अपने बचपन में पिता के साथ मैं देवास की चामुण्डा टेकरी पर जाया करता था। वहाँ की मिट्टी में रात के अँधेरे में कुछ चमकीला दिखाई देता था। मैं टेकरी पर से एक कटोरेनुमा चमकदार पत्थर उठा लाया था। मैं समझता था कि इसके अन्दर हीरे हैं।

घर में एक पत्थर ऑस्ट्रेलिया के सिम्पसन रेगिस्तान का है जहाँ अस्सी के दशक में अन्तरिक्ष से एस्ट्रोलैब आ गिरा था। कभी भटकते हुए मैं वहीं जा पहुँचा और एक पत्थर उठा लाया। मुझे यह कल्पना करना अच्छा लगता है कि यह बाहरी दुनिया का पत्थर है।

दही जमानेवाला हाबुड़ पत्थर

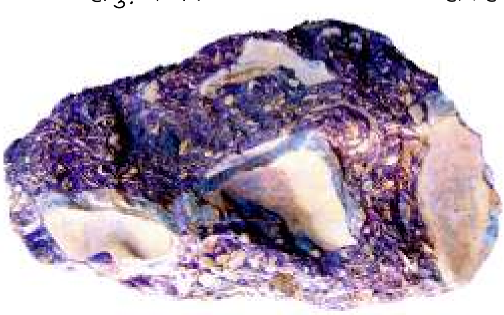

पत्थर जिसके अन्दर हीरे हैं

बाहरी दुनिया का पत्थर

जब एस्ट्रोलैब ज़मीन से टकराया होगा तो उसमें टूट-फूट भी हुई होगी और कुछ पत्थर छिटककर बाहर गिरे होंगे, बस, उन्हीं में से यह एक हो सकता है। एक पत्थर तो ऐसा है जैसे लड्डू को आधा काटकर रखा हो। बाड़मेर ज़िले में एक जगह ऐसी है जहाँ हज़ारों कटे लड्डूनुमा पत्थर बिखरे पड़े हैं। मानों किन्हीं पत्थरभक्षी प्राणियों का प्रीतिभोज रहा हो। पंगत उठने के बाद वे सारे कटे लड्डू पीछे छोड़कर चले गए।

मेरे बगीचे में दो पत्थर काकुल और रैना के हैं। ये दोनों मेरे परिवार की अल्सेशियन बच्चियाँ हैं जो अब इन पत्थरों के नीचे मिट्टी की रज़ाइयाँ ओढ़े गहरी नींद सो रही हैं। जैसे ही मेरी नज़र इन पत्थरों पर पड़ती है वे उछलकर बाहर आ जाती हैं और मुझसे दिल्लगी करने लगती हैं। मेरे पास एक पत्थर वह भी था जिससे ठोकर खाकर मेरे पैर में खून छलछला आया था। मैंने एक उदास मित्र को एक मज़ेदार वाकया सुनाने के साथ वह पत्थर भेंट कर दिया। मुझे भरोसा है वह पत्थर अप्रिय घटना की बजाय दिलचस्प याद दिलाता होगा।

घर में यक्षों और किन्नरोंवाला एक पत्थर खास है। इस पर कुछ आकृतियाँ बनी हैं जो समय के साथ टूट गई हैं, घिस गई हैं। ज़रूर इसकी कोई दिलचस्प कहानी होगी। मगर मेरे लिए इतना काफी है कि इसे बरसों पहले मेरे पिता और उनके गायक मित्र कुमार गन्धर्व बुन्देलखण्ड से एक सूखे नाले में से उठाकर लाए थे। जब मैं इसे एकटक निहारता हूँ तो मेरे दिमाग में तानपूरे की धुन गूँजने लगती है। उसी खास अन्दाज़ में जिसमें कुमारजी की संगत करनेवाले तानपूरे छेड़े जाते थे। पत्थरों की इसी बात का मैं कायल हूँ कि उन्हें कहीं से भी उठाकर लाने पर कोई पाबन्दी नहीं है। न ही वे इस बात का विरोध करते हैं कि कोई उन्हें उनकी मर्ज़ी के खिलाफ उठा ले जाए। वे नई जगह पर तुरन्त रम जाते हैं और सालों-साल अपने मायके की वे ही बातें सुनाते हैं जिन्हें आप याद रखना चाहते हैं।

मुझे पता चला कि पूना में सड़क किनारे अँग्रेज़ अफसर डब्लू. सी. रैण्ड की याद में एक पत्थर रखा हुआ है। इतने वर्षों में वह काफी कुछ सड़क में धँस गया है। शायद वह 22 जून 1897 की उस घटना के बारे में बताता होगा जब चाफेकर बन्धुओं ने उसे राह चलते गोली मार दी थी। फिर मैंने सोचा कि वह पत्थर मुझे क्यों वह सब बताने लगा। जयू और चीनू पटवर्धन ने उन पर फिल्म बनाई थी। मैंने जयू से पत्थर के बारे में पूछा तो वह गुस्से से बिफर पड़ीं और रैण्ड की करतूतों के बारे में याद कर उसे भला-बुरा कहने लगी। पत्थर इस तरह बोल ज़रूर रहा था। मैंने पुणे के लेखक मित्र अनिल अवचट से पूछा तो वे बोले कि वे एक ही पत्थर के बारे में जानते हैं जो वे स्वयं हैं!

यह सच है कि सारे पत्थर कभी किन्हीं बड़े पहाड़ों-चट्टानों का हिस्सा रहे होंगे। लाखों-करोड़ों वर्षों में टूटते-खिरते अब हाथ में उठाने लायक छोटे हो गए। कल्पना करें कि इनके पूर्वज सात विशाल पर्वत रहे होंगे। वैसे ही जैसे सप्तऋषि जिनकी सन्तानें हम सब मनुष्य माने जाते हैं। कल्पनाशील लेखक होने के नाते शायद अनिल भाई को ध्यान में आ गया कि देवों समान ऋषि पिताओं की तुलना में वे एक भाटे बराबर हैं। हम सब भी तो हैं। फिर पत्थरों की तरह क्यों न हमें भी अपनी कहानियाँ प्रामाणिकता के साथ कहनी आनी चाहिए?

पत्थरभक्षियों की पंगत का जूठन

दो पत्थर काकुल और रैना के

यक्षों और किन्नरोंवाला खास पत्थर

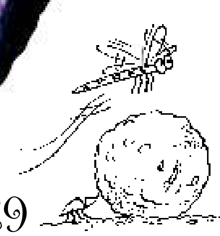

प्यारे भाई रामसहाय

(पेज 11 का शेष भाग)

मजमेवाले ने किसी तरह मुस्कराकर कहा, “खाओ!” उसकी आँखों में पानी भर गया। जैसे यह एक शब्द बोलने में भी उसे बहुत ज़ोर लगाना पड़ा हो। उसने आँखें बन्द कर लीं। हमने पोहे को हाथ भी नहीं लगाया। मजमेवाला निढाल हो चुका था। राधेश्याम ने पोहे को खटिया के पास के स्टूल पर रखा। स्टूल को खटिया के एकदम पास सरका दिया और हमें इशारा किया, “चलो।” फिर निकलते-निकलते आठ-दस मंजन की शीशियाँ उठा लीं और बाहर आकर न जाने किस पर दाँत पीसते हुए बोला, “ऐसी की तैसी, मैं बेचूँगा मंजन। मैं लगाऊँगा कल मजमा।”

दूसरे दिन राधेश्याम ने सचमुच मजमा लगाया। लेकिन ज़्यादा भीड़ नहीं जुटी। राधेश्याम ने मेहनत तो बहुत की, पसीने-पसीने हो गया। लगातार वही जुमले बोले जो मजमेवाला बोलता था, लेकिन अपना तमाशा वो आधे घण्टे से ज़्यादा नहीं खींच पाया। और मंजन की शीशी तो एक भी नहीं बिकी।

उस दिन हमें महसूस हुआ कि पैसे कमाना कितना कठिन होता है।

लेकिन राधेश्याम ने हार नहीं मानी। वह मजमा लगाता रहा। बालकिशन ने खजूरी बाज़ार में कुछ काम किया। हम लोग भी इधर-उधर से कुछ पैसे लाए। इस तरह हमने एक हफ्ते में मजमेवाले के इलाज के लिए पूरे तीन रुपए इकट्ठे कर लिए। एक-एक रुपए के तीन कलदार सिक्के।

अगले दिन हम ये पैसे लेकर फिर मजमेवाले की कोठरी पर गए।

कोठरी पर ताला लगा हुआ था।

हम अनुमान लगाने लगे कि क्या हुआ होगा। क्या मजमेवाला बाहर गाँव चला गया होगा? या किसी ने उसे अस्पताल पहुँचा दिया होगा?

उसी समय हाथ में लोटा लिए और कान पर जनेऊ चढ़ाए आर्य होटल का मालिक पास से गुज़रा। बालकिशन ने पूछा, “भाईसाहब! यहाँ जो रहते थे मजमा लगाते थे, कहीं चले गए हैं क्या?”

“खतम हो गया।” चलते-चलते होटलवाले ने जवाब दिया और पीछे की तरफ निकल गया जहाँ किसी की भैंस बँधी हुई थी।

हम सन्न रह गए। जड़ हो गए।

बालकिशन अहाते के कुएँ के पास गया और तीनों सिक्के कुएँ में फेंक दिए।

फॉर्म-4 (नियम-8 देखिए)

मासिक चकमक बाल विज्ञान पत्रिका के स्वामित्व और अन्य तथ्यों के सम्बन्ध में जानकारी

प्रकाशन का स्थान : भोपाल
प्रकाशन की अवधि : मासिक
प्रकाशक का नाम : अरविन्द सरदाना
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : एकलव्य
ई-10 शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर
भोपाल 462 016

मुद्रक का नाम : अरविन्द सरदाना
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : एकलव्य
ई-10 शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर
भोपाल 462 016

सम्पादक का नाम : सुशील शुक्ल
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : एकलव्य
ई-10 शंकर नगर,
बी.डी.ए. कालोनी, शिवाजी नगर
भोपाल 462 016

उन व्यक्तियों के नाम, राष्ट्रीयता और पते जिनका इस पत्रिका पर स्वामित्व है : रैक्स डी. रोज़ारियो
: भारतीय
: एकलव्य
ई-10 शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर , भोपाल 462 016

मैं अरविन्द सरदाना यह घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)
अरविन्द सरदाना

20 जनवरी 2016

गुल हुए बगुले

अपने सफेद बेदाग पंखों को फैलाए इन बगुलों को देखो! उड़ान भरने को एकदम तैयार। जाने कितने सागर पार करेंगे! हाँ, अगर इनको तुमसे मिलना है तो सागर तो पार करने ही पड़ेंगे। ये जापान, कोरिया, चीन जैसे सुदूर पूर्व के देशों में जो उगते हैं। अटक गई न गाड़ी! जी हाँ, ये उगते हैं क्योंकि ये बगुला-सारस नहीं फूल हैं – हबेनारिया रेडिएटा *(Habenaria radiata)*। पूरब के देशों की नम ज़मीन इस गुच्छेदार फूल का ठिकाना है।

5-20 सेण्टीमीटर लम्बी और करीबन एक सेण्टीमीटर चौड़ी इनकी पंखुड़ियों की संख्या सात तक होती है। जुलाई और अगस्त में जब यह फूल पूरी तरह खिलता है तो इसकी ऊँचाई 50 सेण्टीमीटर तक हो जाती है। खिलने की प्रक्रिया में जब इसकी हलकी काँटेदार पंखुड़ियाँ धड़ का साथ छोड़ती हैं तो पंख फैलाए बगुले की-सी नज़र आती हैं। लगता है कि बस यह अब उड़ा-तब उड़ा।

अफसोस कि अपने प्राकृतिक आवास में यह फूल अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है। यह जहाँ उगता है वहाँ धान की खेती भी की जाती है। तो, समझ लो कि मनुष्य की भूख इस फूल की सुन्दरता पर भारी पड़ जाती है। इसे खोदकर धान की रोपाई कर दी जाती है।

फिलहाल यह फूल जापान के उन्हीं ऊपरी इलाकों में सिमटकर रह गया है जहाँ खेती नहीं होती। चीन और कोरिया में भी यही हालत है। रही सही कसर फोटोग्राफरों ने पूरी कर दी है। फोटोग्राफरों की फौज़ इनकी तस्वीरें उतारने वहाँ पहुँच जाती है और बड़ी संख्या में ये फूल उनके पैरों तले कुचले जाते हैं।

जापान के लोगों ने इसकी कई नई किस्में विकसित की हैं। उन्होंने इसकी प्राकृतिक सफेदी में कुछ रंग भरे हैं। व्यावसायिक इस्तेमाल के लिए इसकी खेती भी की जाती है। यह नाजुक पौधा उर्वरकों का बहुत अधिक इस्तेमाल झेल नहीं पाता है।

मेरा पन्ना

पेड़: एक कविता

एक पेड़ की सुनो कहानी
यह बात है नई पुरानी
जब मैं छोटी बच्ची थी
मम्मी लगाती पेड़ थीं
एक पेड़ को मैंने बोया
बढ़ते-बढ़ते उसको खोया
आओ सुनाऊँ उसकी कहानी
जिस पेड़ में है बात पुरानी

हो गया था बहुत बड़ा अब
जान के दुश्मन बहुत हैं अब
चलते-फिरते नहीं तो क्या हुआ
जान तो है इंसानों के समान

फिर आई वो गौरा देवी
जिसने बनाया पेड़ों को भाई
इतना भरोसा नहीं अपने भाई पर
जितना था उस नन्हे पेड़ पर
जब झपटे दुश्मन सारे
वो लिपट गई उन पेड़ों पर
ये कहानी है पुरानी
लेकिन अब बन गई है नई कहानी

न छीनो तुम इनका जीवन
दे दो इक मौका तुम
दे दो इक मौका तुम

—निकिता, सातवीं, अजीम प्रेमजी स्कूल उत्तरकाशी, उत्तराखण्ड

- अमन डेकाते, दसवीं, कमला नेहरू स्कूल, भोपाल

स्कुल के बारे में

स्कुल आता है और मेहढ़म और सारजी आ गाये तो गनटी बजता है और पारताना करके केलास आते है और कोलास गुसने के बाद साब बच्चा चुपचाप बायेट जाता है लेकिन चार बच्चा नहीं बाहेटता है केलास गुसते ही चार बाच्चा बहुत चीलाता है उसका नाम तो नही लिखुंगा कियूकी स्कुल में उन चारो बाच्चो का नाम बादनाम ओ जायेगा। ईसिलिये उनका नाम नही लिखा है और आप लोग पुचेगे तो बाता देगे उन चार बाच्चा बहुत बादमास है कभी लड़की को चीड़ता है कभी गान्दा गान्दा बात कारता है हम उस चार बाच्चा का बहुत गुसा लागता है लेकीन हम क्या कारू हम उसको मारू तो दीदी सार हमको साजा देता है ईसीलिये हम उस को नही बोलता है बास इतना ही लिखा है।

ठाईन्टीयू ठाईन्टीयू

- मनसा पुरती, आठवीं, सरविल, महुदी, झारखण्ड

सहेली के संग खेल मदारी

मेरा बचपन मुझे बहुत ही अच्छा लगता था। मैं एक बार अपनी सहेली के साथ स्कूल जाने के लिए घर से निकली तो रास्ते में एक खेल मदारी दिखा रहा था। उसके आसपास बहुत सारे लोग जमा थे और सब खेल मदारी देख रहे थे। मैं अपनी सहेली से बोली कि चलो हम दोनों भी खेल मदारी देखते हैं। मेरी सहेली बोली, "नहीं हमें देर हो जाएगी।" तो मैं बोली, "अभी तो बहुत समय है। चलो हम दोनों थोड़ी देर देखकर फिर चलेंगे।" फिर मैं और मेरी सहेली देखने चले गए। और हम लोगो ने देखा कि एक भालू नाच रहा था जिसे सारे बच्चे और बड़े देखकर हँस रहे थे। हम दोनों भी खूब ही हँस रहे थे। हमें स्कूल के लिए देर हो गई। और जब हम दोनों स्कूल पहुँचे तो हमें हमारी मैडम ने दो छड़ी लगाई। उसके बाद मैं देर से नहीं जाती।

—नेहा कुमारी, आठवीं,
बड़हुलिया ग्राम, उ. प्र.

बर्फीला मौसम

उफ ये बर्फीला मौसम!
कैसे पीछा छुड़ाऊँ इससे
काँप रहे हैं, छींक रहे हैं
कुछ तो कितना हाँफ रहे हैं
किटकिट दाँत तक काँप रहे हैं
ठण्ड से सब लोग जम रहे हैं
मैं भी न जम जाऊँ कहीं
इसीलिए हज़ार स्वेटर पहन रखे हैं

- स्वेतलाना पाटिल,
तीसरी, डीपीएस पुणे

- ओंकार कापसे, तीसरी,
नान्देड़, महाराष्ट्र

- मेहा पाठक शर्मा,
चौथी, जयपुर

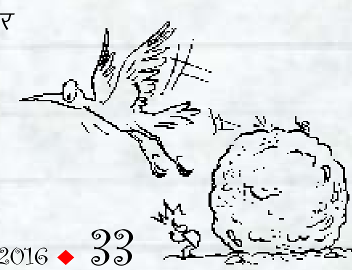

मेरा पन्ना

एक उड़ान

एक बार एक लड़के को उसकी कक्षा में उड़ान के बारे में बताया गया था। अब तो वह हर समय उड़ान के बारे में सोचता है। वह देखता है कि वह एक चिड़िया बन गया है। वह चिड़िया की तरह आसमान में उड़ता है। उड़ते-उड़ते वह पहाड़ों पर पहुँच जाता है। पहाड़ों पर पहुँचकर वह एक घने पेड़ की छाँव में गिरे हुए फल को खाता है। फिर वह कई गाँव व नदी को पार करके एक जंगल में पहुँचता है। वह जंगल में हाथी के झुण्ड को एक पेड़ पर बैठकर देखता है। वहाँ से उड़कर अन्य जानवरों को देखता है। उसको शेर, चीता, भालू आदि जानवरों से कोई खतरा नहीं है क्योंकि वो जानवर उड़ नहीं सकते। उड़ने के बाद उसको प्यास लगती है। एक साफ नदी के शीतल साफ व मीठे जल को पीकर प्यास बुझाता है। वह नदी में अपने पंखों को गीला करना चाहता है। पर इतने में तेज़ बरसात आ जाती है। वह बरसात से बचने के लिए घने पेड़ की पत्तियों के बीच जा बैठता है। वह बरसात से डर को हटाने के लिए धीमी बरसात में आकाश में उड़ता है। थोड़ी देर बाद बरसात रुकने पर आगे उड़ान भरता है। वह अपनी उड़ान से खुश है। वह वापिस लौटता है। वह रास्ते में एक गाँव में रुककर बच्चों को खेलता हुआ देखता है। आँधी आने पर वह थोड़ा डगमगाता है। फिर थोड़ा-सा आगे बढ़ता है कि एक पेड़ से टकरा जाता है और गिर जाता है। वह देखता है कि वह चिड़िया नहीं है और उसकी माँ उसे जगा रही है, "प्रियांशु कब जगेगा, कब तैयार होगा, स्कूल को देर हो रही है।"

– क्षितिज शर्मा, आठवीं,
शिवा एकेडमी सीनियर सैकेण्डरी विद्यालय, करौली, राजस्थान

- दीपिका, आठवीं, विद्यावनम स्कूल, तमिलनाडु

-सुहानी, सातवीं, धारावी आर्ट रूम, मुम्बई

कुत्ते को मारेंगे

दो शेर थे। दोनों ने सोचा कि हम खरगोश और कुत्ते को मारेंगे। दोनों ने सोचा कि चलो चलते हैं। लेकिन हम पहले किसको पकड़ेंगे। दोनों शेर ने सोचा कि हम पहले खरगोश को पकड़ेंगे। चलो चलते हैं। जाते-जाते एक खरगोश दिख गया। शेर बोला, "चलो पकड़ते हैं।" एक शेर खरगोश के ऊपर कूद गया। खरगोश मर गया। दूसरा बोला, "चलो कुत्ते को पकड़ने चलते हैं।" जाते समय एक कुत्ता मिल गया। दूसरे शेर ने बोला, "ये कुत्ता मेरा है।" शेर कुत्ते के ऊपर कूद गया। कुत्ता थोड़ी देर तक चिल्लाया और कुत्ता मर गया। शेर बोला, "चलो कुत्ता और खरगोश को खाते हैं।"

—भूमिका ध्रुव, चौथी,
अजीम प्रेमजी स्कूल, धमतरी, छत्तीसगढ़

शीत ऋतु

ठिठुरती कँपकँपाती हुई उँगलियाँ अब
न कागज़ ही छूती, न छूती कलम हीं।
यही हाल कल था, यही आज भी है
है सम्भव रहेगा यही हाल कल भी।

निकल घर के बाहर कदम जो रखा तो
बजी सरगम दाँत से झनझनाकर
हवा उस पे सन-सन मंजीरे बजाती

न लिखने का दम है न पढ़ने की इच्छा
ये सुइयाँ घड़ी की लगे थम गई हैं
यूँ झेलते हैं हम शीत की ऋतु में
ये कविता जैसे मेरी जम गई है

—अनन्या मिश्रा, आठवीं, डीपीएस वाराणासी, उ. प्र.

- कोपल जैन, पाँच साल, भोपाल

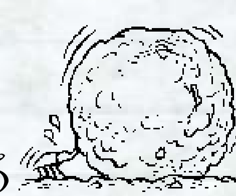

निम्बू से टॉयलेट-क्लीनर

अंकुश गुप्ता

इस बार बात करते हैं सफाई की। तुमने शौचालयों में देखा होगा कि लगातार इस्तेमाल से उस पर एक पीली-सी परत जमने लगती है जो पानी डालने पर भी नहीं छूटती है। इसे साफ करने के लिए अकसर तेज़ाब का प्रयोग होता है। इसे काफी सम्भालकर रखना पड़ता है क्योंकि इससे नुकसान पहुँचने का खतरा रहता है।

तेज़ाब अम्लीय पदार्थ होता है। तो चलो पता लगाएँ कि क्या कुछ कम हानिकारक पदार्थों से भी टॉयलेट-क्लीनर बनाया जा सकता है। तो पुराने-खराब निम्बू के रस या सिरका से टॉयलेट साफ करने की कोशिश करो। खराब फलों के रस को सड़ाकर भी सिरका बनाया जा सकता है। (सिरका कैसे बनता है यह अपने शिक्षकों या बड़ों से पता करो...)। क्या कोई फेंके जानेवाले खाद्य पदार्थों से भी हलके अम्लीय घोल बनाए जा सकते हैं?

कोशिश करना और जो नतीजे आएँ हमें भेजना। तुम्हारे पत्रों का इन्तज़ार रहेगा।

(इस गतिविधि में हिस्सेदारी करनेवालों के नाम पेज 27 पर)

दिसम्बर के अंक की गतिविधि में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने के लिए शुक्रिया। तुमने अलग-अलग मिट्टियाँ लीं। उनमें निम्बू या सिरका मिलाया। और उनमें उठते बुलबुले देखे। बुलबुले क्यों बने यह अंकुश गुप्ता बता रहे हैं...

प्रिय दोस्तो,

तुम सभी के मिट्टी पर किए गए प्रयोगों को देखकर अच्छा लगा। तुम में से अधिकतर ने सड़क किनारे से, खेत से, बगीचे से, घर में से ही कई तरह की मिट्टियाँ लीं। किसी को सड़कवाली मिट्टी में सबसे ज़्यादा बुलबुले मिले, तो किसी को रेत में और किसी को बगीचे की मिट्टी में। तुम में से कुछ ने सही पहचाना कि ये बुलबुले कार्बन डाई ऑक्साइड गैस के हैं। जब मिट्टी में केवल पानी डाला था तो उसमें बने बुलबुले हवा के होते हैं, जिसमें नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, कार्बन डाई ऑक्साइड, आदि सभी गैसें होती हैं। तो अब सवाल उठता है कि मिट्टी में कार्बन डाई ऑक्साइड कहाँ से आई! क्या मिट्टी भी इंसानों और जानवरों की तरह साँस लेती है? इसका उत्तर तो "नहीं" होगा क्योंकि यदि मिटटी साँस लेती तो सभी मिट्टियों से बुलबुले निकलते, और केवल पानी डालने पर भी लगातार निकलते रहते। मिट्टी में कार्बन डाई ऑक्साइड के दो तरह के स्रोत होते हैं। एक है, उसमें उपस्थित जीवाणु और कीड़े-मकोड़े। इन जीवों की संख्या हर मिट्टी में अलग-अलग होती है। यदि मिट्टी क्षारीय और गीली है, तो जीवों द्वारा छोड़ी गई कार्बन डाई ऑक्साइड लवणों के रूप में मिट्टी में जम जाती है।

कार्बन डाई ऑक्साइड का दूसरा स्रोत कार्बोनेट लवण होते हैं जो किसी भूगोलिक प्रक्रिया द्वारा बनते हैं। कुछ मिट्टियाँ तो 50 प्रतिशत तक इन कार्बोनेट लवणों से बनी होती हैं। ऐसी मिट्टी आमतौर पर क्षारीय होती है। लेकिन ऐसी भी कई मिट्टियाँ होती हैं जो क्षारीय नहीं होतीं लेकिन उनमें कार्बोनेट लवणों की मात्रा काफी होती है।

माथापच्ची

बैल – रेल – रेत – खेत

1 ऊपर तुमने देखा कि किस तरह सिर्फ एक-एक अक्षर को बदलते हुए हम "बैल" शब्द से "खेत" शब्द तक पहुँचे। इसी तरह तुमने एक-एक अक्षर बदलते हुए "गुलेल" शब्द से "सलाख" शब्द तक पहुँचना है। शर्त यह है कि हर बार में बननेवाला शब्द सार्थक होना चाहिए और ऐसा तुम्हें कम से कम बारी में करना है।

2 एक तराजू के दोनों पलड़ों में एक जैसे कप रखे हैं। दोनों में पानी भी बराबर ऊँचाई तक भरा है। लेकिन एक कप में एक कॉर्क तैर रहा है। कौन-सा पलड़ा भारी होगा?

3 सर्दियाँ हैं तो एक सवाल कम्बलवाला – दो इंच का कम्बल ज़्यादा गरम होगा कि एक-एक इंच के दो कम्बल?

4 दो बरतन हैं। एक में गरम पानी है एक में ठण्डा। दोनों में एक-एक चम्मच डालकर निकाल ली जाए तो कौन-सी पहले सूखेगी? क्यों?

5 मान लो कि तुम एक रेलगाड़ी के डिब्बे में बैठे हो। गाड़ी 36 किलोमीटर प्रति घण्टे की रफ्तार से चल रही है। तुम छलाँग लगाते हो और एक सेकंड के लिए हवा में रहते हो। जब तुम्हारे पाँव डिब्बे पर पड़ते हैं तो तुम छलाँग लगाने की जगह से कितनी दूर होगे? यह दूरी किस तरफ होगी – रेल के इंजिन की तरफ या उसके उल्टी तरफ?

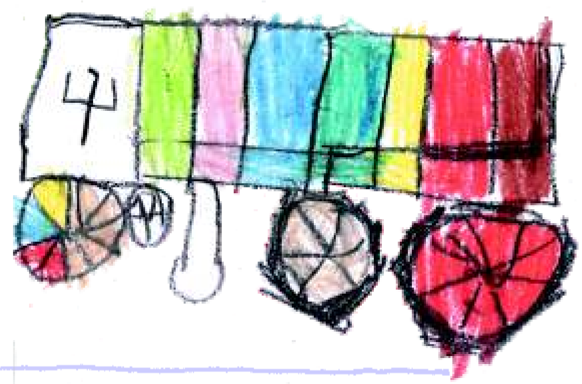

(उत्तर पेज 47 पर)

पहेली

कॉलेज में चन्द्रकान्त और सहगल की दोस्ती बहुत मशहूर थी। उठाना, बैठना, पढ़ना, घूमना सब साथ होता। सहगल किसी काम से रोज़ बाहर जाता। उसे लाने चन्द्रकान्त रोज़ हॉस्टल से साइकिल से गेट तक जाता।

एक दिन सहगल आधा घण्टे जल्दी आ गया। गेट पर खड़ा रहने की बजाय वो हॉस्टल की तरफ चल दिया। इधर चन्द्रकान्त रोज़ के समय पर हॉस्टल से निकला। पर रास्ते में ही उसे सहगल मिल गया। और दोनों रोज़ के समय से 20 मिनट पहले हॉस्टल पहुँच गए।

अब सवाल यह है कि सहगल कितनी देर पैदल चला? हाँ, तुम यह मान सकते हो कि चन्द्रकान्त की साइकिल की गति सहगल के साथ और बिना के बराबर ही थी।

चित्र : दिलीप चिंचालकर

|| लोककथा ||

सारस और सियार

सारस और सियार की मुलाकात कुछ-कुछ दोस्ती में बदल गई थी। इतनी दोस्ती में कि इन दिनों दोनों एक-दूसरे को अपना घर और ज़मीन-जायदाद दिखाने में लगे थे। भले ही दोनों में दोस्ती बढ़ रही हो, पर उनके मिज़ाज में बहुत फर्क था, बहुत-बहुत फर्क।

सियार ने सारस को एक विशाल गुफा दिखाई। वह गुफा शेर की थी लेकिन सियार ने अपनी बताई।

"ऐसी गुफा तो किसी शेर के पास भी न होगी!" सारस ने आश्चर्य से कहा था।

"हो सकता है।" सियार इतना कहकर चुप हो गया। मगर उसने अपनी हेकड़ी जारी रखी, "यह देखो झील। यह हमारा छोटा-सा स्नानागार है। मेरा निजी है। कोई और यहाँ नहीं नहा सकता।"

उधर पहाड़ी से बहता एक झरना दिखाते हुए कहा, "ये मेरे परिवार के लिए निजी पेयजल व्यवस्था है। किसी को भी यहाँ पानी पीने के लिए आने पर सख्त प्रतिबन्ध है। कोई चौराहे का हैण्डपम्प थोड़े ही है।" कहते हुए वह एक बेजान हँसी हँसा।

"यह पहाड़ भी मैंने छह महीने पहले ही खरीदा है। हम सियारों को शाम के समय हूऽऽ हूऽऽ करने के लिए किसी उपयुक्त जगह की तलाश रहती है। मुझे लगा हुहाने के लिए इससे बढ़िया जगह और नहीं हो सकती। सो मैंने पिछले ही महीने वन एवं पर्यावरण मंत्री से कह-सुनकर यह सौदा कर ही लिया है।"

सारस को इस दोस्ती से घुटन महसूस होने लगी मगर क्या करता दोस्ती तो दोस्ती है। हो जाने के बाद निभानी पड़ती है। नहीं निभाने के लिए मन में कठोरता चाहिए।

"तुम समझ सकते हो कि शाम के समय हुहाने के लिए मुझे साधारण सियारों की तरह खेत, मैदान, बाड़ी जैसी मामूली जगहों पर निर्भर रहने की अब कोई ज़रूरत नहीं।" सियार के एक-एक शब्द में दम्भ बोल रहा था। उसकी पूरी बातचीत में शब्द कुछ भी हों आवाज़ घमण्ड की ही सुनाई देती थी। उसकी बातें सुन-सुनकर सारस के कान पक गए। वह थोड़ा सहम गया। असल बात तो यह है कि वह डर गया था, इस दोस्ती के इतना बढ़ जाने से।

झूठ और दम्भ का अपना विशाल साम्राज्य दिखाने के बाद सियार ने सारस से कहा, "अब तुम्हारा इलाका देख लिया जाए। देखते हैं तुम्हारे पास क्या है?"

"जी, ज़रूर। चलिए।" सारस ने डैने फैलाकर आकाश में उड़ने की तैयारी करते हुए कहा।

"खड़े ही रहोगे कि सरकोगे भी।" सियार ने अभी-अभी दिखाई अपनी सम्पत्ति से उपजे दम्भ के भाव से कहा।

"सरकूँगा नहीं उड़ूँगा।" सारस ने कहा, "मेरा इलाका आकाश में है। वहाँ चलने के

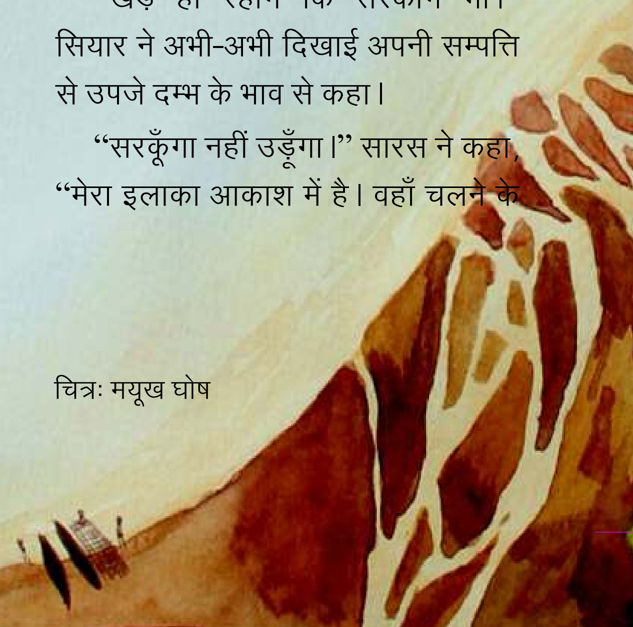

चित्रः मयूख घोष

लिए आपकी कोई निजी तैयारी है कि मैं कुछ मदद करूँ।"

"उड़ना? यह क्या होता है। ऐसे किसी सामान का तो मेरी सात पुश्तों में कभी ज़िक्र नहीं आया। पर तुम बताओ मैं अभी खरीद लेता हूँ।" सियार ने कहा।

सारस समझ गया कि समस्या कहाँ है। उसने कहा, "आप मेरे पैर पकड़ लीजिए। मैं उड़ान भरते हुए ऊपर की ओर उठूँगा। आप भी मेरे साथ रहोगे। ठीक है।"

"ठीक है।" सियार ने कहा।

सारस ने उड़ान भरी। कुछ ही पलों में सारस के पैर पकड़े हुए सियार आसमान में था। "यही मेरा इलाका है।" सारस ने कहा।

लाल-सफेद-काले बादलों की जादुई रंगों से भरी असीम जगह को देखकर सियार के दिमाग को चार सौ चालीस वोल्टेज का झटका लगा। बोला, "इसका तो कहीं कोई ओर-छोर ही पता नहीं चल रहा है। तुमने अपनी जगह की सीमा नहीं खींच रखी है क्या?"

"नहीं। कोई सीमा नहीं है। सारा आकाश पंछियों का है, तारों का है, बादलों का है, धरती और दूसरे ग्रहों का है, आकाशगंगा का है, सबका है। जिसमें जहाँ तक रहने-आने-जाने की कुव्वत होती है। रहता-आता-जाता है।"

"बादलों, तारों, ग्रहों, आकाशगंगाओं को छोड़ो, तुम तो तुम्हारा हिस्सा किधर-किधर है वो दिखाओ। सबका हिस्सा क्यों दिखाते हो?"

"मेरा हिस्सा कहीं नहीं है। यहाँ हिस्सों के लिए कोई जगह ही नहीं। हिस्से हैं ही नहीं। यहाँ पूरा का

पूरा सबका है।" सारस अब उसे और कैसे समझाता!

"मतलब ये तुम्हारा नहीं है?" सियार ने कहा।

"कहा न, सबका है। अब जैसे तुम आ गए तो तुम्हारा भी है।"

"अच्छा, मेरा भी है। यहाँ आने भर से जगह अपनी हो जाती है। तो मैं तो अपनी जगह की तारबन्दी कर लेता हूँ। कितनी देर और तुम्हारा यहाँ उड़ते रहने का इरादा है?" सियार का लालच समुद्र की लहरों की तरह ठाठें मारने लगा।

"फिक्र मत करो। जब तक तुम चाहो, मैं यहीं हूँ।" सारस ने कहा।

"फिर ठीक है।" कहते हुए सियार ने वहाँ एक घेरा खींच देने के इरादे से सारस के पैर छोड़ दिए और तैरने लगा, लेकिन सीधे नीचे की ओर।

और तालाब के कीचड़ में जाकर गिरा।

दूर खड़ा एक चरवाहा देख रहा था कि एक सियार कीचड़ में फँस गया है। निकलना चाहता है पर निकल नहीं पा रहा है। उसने सियार की पूँछ पकड़कर उसे बाहर निकाल दिया।

मुसीबत से बाहर आते ही सियार का फिर वही दिमाग। चरवाहे से बोला, "मैं तो अपने बाप-दादा की दलदली ज़मीन की नापजोख कर रहा था। तुम बीच में वक्त बर्बाद करने कहाँ से चले आए! लाओ हर्ज़ाना भरो। अपनी एक कलोर गाय मेरे हवाले करो।"

"जाता है कि लगाऊँ एक।" चरवाहे ने लाठी लहराते हुए कहा।

"ओह! मैं भूल जाता हूँ कि पहले कब-कब कहाँ-कहाँ क्या-क्या कर चुका हूँ।" ऐसा कुछ बुदबुदाते हुए सियार रिश्वतखोर सिपाहियों और अफसरों की तरह खिसियाते हुए खिसक लिया।

पुनर्लेखन - प्रभात

खेतों में रंग

प्रभात

पेड़ों में चिड़ियों के शोरों से है
खेतों में मोर रंग मोरों से है

बाँसों में बाँस रंग बाँसों से है
काँसों में काँस रंग काँसों है

जोतों का रंग हल की जोतों से है
खेतों में तोता रंग तोतों से है

सारंग सुरंग सुरंग सारंग से है
सारस सरस रंग सारंग से है

रंग सोन मछली की आँखों से है
रंग चाँद बगुले की पाँखों से है

टिड्डे के पैरों सी घासों से है
खेतों में घास रंग घासों से है

फसलों के खन-खन खनकने से है
सोना रंग फसलों के पकने से है

चित्रः स्वाति गुप्ता

बाज़ार

एक बैगा लोकगीत

बजारे
डूमर तरी लगी है बजारे
कारा नागिन लूरे

कहां हवयं दाई
कहां हवयं भाई
कहां हवयं लोक परिवार

संगे मा दाई
संगे मा भाई
संगे मा लोक परिवार

डूमर तली लगी है बजारे
कारा नागिन लूरे

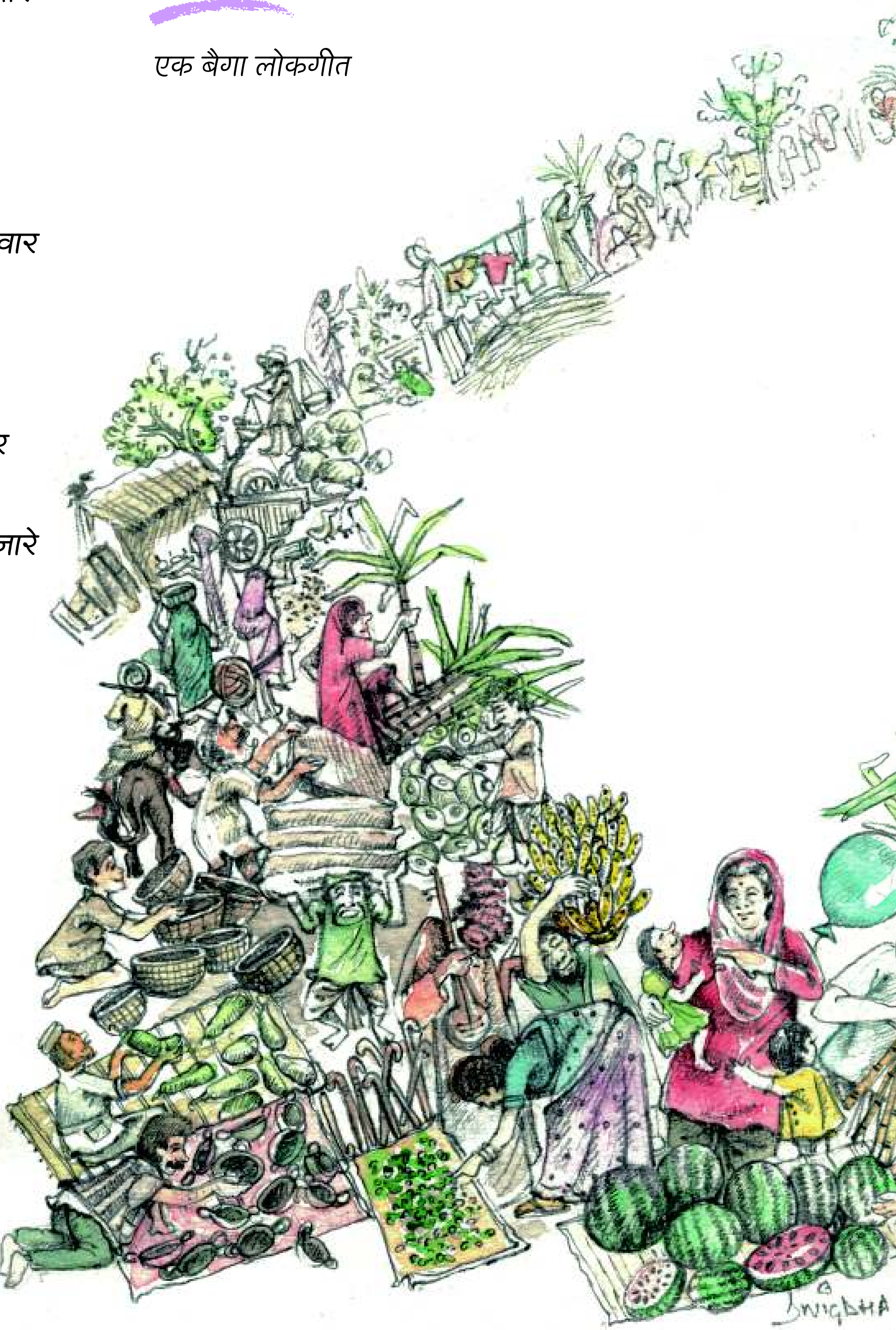

चित्रः स्निग्धा बैनर्जी

डूमर तले लगा है बजार

नागिन की तरह लहरा रहा है

कहाँ है भाई

कहाँ है माई

कहाँ है सारा परिवार

साथ है माई

साथ है भाई

साथ में सारा परिवार

डूमर तले लगा है बजार

नागिन की तरह तहरा रहा है

(साभारः नेग फाइर संस्था, भाषांतर - प्रभात)

इमली : हिन्दुस्तान का खजूर

(पेज 15 का शेष भाग)

फारसी में इसका नाम "तमार ए हिन्दी" है। वहाँ थमार का अर्थ है फल और तमार का खजूर। अरबी और फारसी के "तमरहिन्द" को अँग्रेज़ी ने अपनी ध्वनि में ढालकर "तैमारिण्ड" कर लिया। अँग्रेज़ी में "त" की ध्वनि की जगह केवल "ट" है। वहाँ "ह" की ध्वनि भी नहीं रही इसलिए वहाँ अरबी फारसी का "तमरहिन्द" बन गया "टैमरिण्ड" (तैमरिंग)।

सन् 1298 में यूरोप के यात्री मार्को पोलो ने लिखा – *जब उन्होंने एक व्यापारी जहाज़ ले लिया तो उन्होंने सौदागरों को पानी में मिलाकर एक चीज़ "तमारिन्दी" पीने पर मजबूर किया।*

स्पष्ट है मार्को पोलो यहाँ इमली के शरबत का ज़िक्र कर रहा है।

इमली का पेड़ भारत और म्यांमार में बहुत होता है। इसकी तासीर ठण्डी होती है। इमली की लकड़ी बहुत मज़बूत होती है और पानी में गलती नहीं है। इसलिए इमली की लकड़ी नाव बनाने के काम आती है। उत्तर भारत के भोजन में खटाई के लिए कच्चे आम का प्रयोग होता है, तो दक्षिण भारत में इमली का। कहावत है कि इमली की छाया में सोने से बुखार आ जाता है और नीम के नीचे सोने से उतर जाता है, लेकिन इस कहावत के विपरीत स्याम (थाइलैंड) के लोग इमली के नीचे खेलते भी हैं और सोते भी हैं। इलाहाबाद में मुख्य सड़क के दोनों ओर इमली के पेड़ थे। 1857 की क्रान्ति के बाद अँग्रेज़ों ने भारतीय क्रान्तिकारियों को इन पेड़ों पर लटका दिया था। इलाहाबाद में ये पेड़ आज भी खड़े हैं।

दिसम्बर की चित्र पहेली हल

गु	ल	दा	उ	दी		कं	ब	ल
ल्ल		ल		म	हू	का		की
क	रा	ची		क		ल	ह	र
		नी	म		क		थ	
	ते		दा	तौ	न		क	ण्डा
अ	ल	मा	री		प	ग	ड़ी	
ण्डा		चि		गो	टी			हि
	ब	स		दा		मो	ह	र
पि	ल्ला		इ	म	र	ती		ण

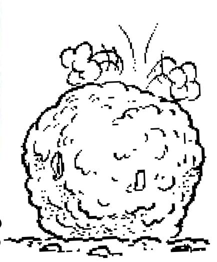

एक था हाजी
एक था नाजी

स्वयं प्रकाश

चित्र: अतनु राय

डॉक्टर नाजी सो रहे थे। रात को अचानक उनकी नींद खुली और उन्होंने पाया कि उनका टॉयलेट पूरी तरह चोक हो चुका है।

डॉक्टर नाजी ने यह बात अपनी पत्नी को बताई और कहा, "मैं अभी प्लम्बर को फोन करके बुलाता हूँ।"

"रात को तीन बजे प्लम्बर को बुलाओगे? और वह आएगा?" पत्नी ने पूछा।

"क्यों नहीं आएगा? हम भी तो जाते हैं जब किसी मरीज़ का फोन आता है कि उसकी तबीयत ज़्यादा खराब है!" डॉक्टर नाजी ने कहा।

तो डॉक्टर नाजी ने प्लम्बर हाजीराम को फोन किया और उससे तुरन्त आने को कहा।

प्लम्बर हाजीराम ने बहुत कहा कि डॉक्टर साहब मैं सुबह देख लूँगा लेकिन डॉक्टर नाजी उसे तुरन्त बुलाने पर अड़े रहे।

रात कोई साढ़े तीन बजे प्लम्बर हाजीराम आँखें मसलता हुआ आया। उसने टॉयलेट को देखा। कमरे में आया और एक तरफ पड़े किसी गोली के पत्ते को देखा। पत्ते में से दो गोलियाँ निकालकर टॉयलेट में डालीं और बोला, "सुबह तक आराम आ जाएगा। नहीं तो फोन कर लेना।"

नज्जू चोर एक रात किसी घर में घुसा। दबे पाँव।

बरामदे में एक बुढ़िया सोई थी। चोर के कदमों की आहट से उसकी आँख खुल गई।

"कौन?" बुढ़िया ने पूछा।

नज्जू चोर चुप रहा।

उसे देखकर बुढ़िया बोली, "तुम चोर हो क्या? चोरी करने आए हो? लगते तो किसी अच्छे घर के हो! खैर, तुम्हारी भी कोई मजबूरी होगी। भैया, वो सामने जो अलमारी है न, उसके तीसरे खण्ड में तिजोरी है। उसकी चाभी मेरे पास है। लो ले लो और जितना चाहिए माल निकाल लो। पर भैया, बदले में तुम्हें भी मेरा एक काम करना पड़ेगा। मैंने अभी-अभी एक बड़ा अजीब-सा सपना देखा है, तुम्हें सोच के बताना पड़ेगा कि इसका मतलब क्या हो सकता है। ठीक है? आओ, बैठो इधर।"

नज्जू चोर क्या करता! आकर बैठ गया।

बुढ़िया बोली, "मैंने देखा कि मैं किसी रेगिस्तान में भटक गई हूँ और रो रही हूँ ज़ोर-ज़ोर से ऊँ...ऊँ..... ऊँ... अचानक एक चील आती है कहीं से और मेरे कान में चीखकर कहती है – हा.... जी हा.... जी.... हा.... जी।"

बुढ़िया की आवाज़ सुनकर पास के कमरे में सोए उसके बेटे हाजी की आँख खुल गई। वह आया और चोर को पकड़कर पीटने लगा।

बुढ़िया बोली, "बस कर बेटा, इसे अपने गुनाहों की सज़ा मिल गई।"

"नहीं, और पीटो!" नज्जू चोर बोला, "मैं भूल गया था कि मैं चोर हूँ, कोई सपनों का मतलब बतानेवाला नहीं।"

मिट्टी में से बुलबुले

(पेज 27 का शेष भाग)

इस गतिविधि में हिस्सेदारी करनेवालों के नाम हैं –

विश्वास स्कूल, गुड़गाँव – गणेश, लवकुश, मनीषा, रागिनी, वर्षा (छठी), अंजलि, सुजीत, राहुल, भुवनेश, चन्द्रशेखर, लखन, मनीष (सातवीं), रवि, आठवीं।

डीपीएस पटना - अंकित झा, अदिति, औशिन आलोक, कौस्तव प्रसाद, ईशान वर्मा, प्रतीक आनन्द, अतीका फतेही, सार्थक राज, अक्षत उपाध्याय (आठवीं), देवेशी, दसवीं।

डीपीएस लुधियाना - अर्शिया गोयल, पुष्टि गोयल, देवांश मित्तल, नन्दिनी गुप्ता, अमीशी मल्होत्रा, राजवंश सिंह (चौथी), ईशान सिद्धू, दिव्याक्षी जैन (पाँचवीं)

माथापच्ची के जवाब

2. दोनों बराबर होंगे
3. एक-एक इंच के दो कम्बल
4. गरम पानी में डुबाई चम्मच। क्योंकि वो चम्मच गरम हो जाएगी और उस पर लगा पानी गरमी लेकर जल्दी उड़ जाएगा।
5. उसी स्थान पर।

पहेली का उत्तर

चन्द्रकान्त और सहगल 20 मिनट पहले पहुँचे यानी चन्द्रकान्त ने जाते और लोटते हुए 10-10 मिनट कम साइकिल चलाई होगी। इसका मतलब सहगल उसे रोज़ की तुलना में दस मिनट पहले मिला होगा जहाँ वो चन्द्रकान्त की साइकिल पर बैठा होगा।

पर सहगल रोज़ की तुलना में आधे घण्टे पहले गेट पर पहुँचा और 10 मिनट पहले चन्द्रकान्त से मिला यानी वो बीस मिनट तक सड़क पर अकेले चला होगा।

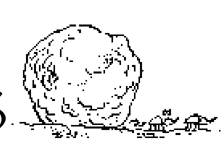

एक ततैया

अनूप देवधर

मैं कई दिनों से अपनी बालकनी में एक ततैये को मण्डराता देख रहा था। एक दिन जब वो आकर अभी बैठा ही था कि मैं कैमरे सहित वहाँ पहुँच गया। और तब समझ आया कि मेरे घर में एक और घर बन रहा था। एक मादा ततैया (बाद में किताबों और दोस्तों से पता चला कि वो मादा थी) बड़े जतन से मिट्टी को अपनी थूक से गीला कर घोंसला बना रही थी। सामने दो गोल दरवाज़े दिख रहे थे। एक में तो घुसा जा सकता था पर दूसरा शायद रसोई थी जिसमें खाने का सामान जमा हो रहा था। मैंने उस घर की तस्वीरें लीं और फेसबुक में पोस्ट कर दीं। दोस्तों ने बताया कि वो पॉटर वास्प यानी कुम्हार ततैया है। ये इल्लियों को डंक मारकर बेजान करने के बाद मिट्टी की कोठरियों में जमा कर देती हैं। इसके बाद हर कोठरी में एक अण्डा देकर उस कोठरी को बन्द कर देती है। कुछ दिन बाद अण्डे में से बच्चे निकलकर इन्हीं इल्लियों की दावत उड़ाते हैं।

एक टिबुकली

जयेश घाणेकर

चिड़ियों से मिलना हो तो सुबह-सुबह का समय सबसे बढ़िया रहता है। उधर वो निकलती हैं अपने खाने-पीने की जुगाड़ में, इधर हम निकलते हैं उन्हें देखने। तो रोज़ की तरह उस दिन भी मैं सुबह-सुबह निकला। हमारे शहर पुणे में कई पहाड़ियाँ हैं। तो सोचा आज पहाड़ी पर ही चला जाए। वहाँ खूब मस्त हवा चलती है। देर तक इधर-उधर घूमते-घूमते मैं पास के तालाब में तैरते पक्षियों को देखने लगा। अचानक निगाह एक छोटे-से पक्षी पर गई। वो लिटिल ग्रेब (*Tachybaptus ruficollis*) थी। उसकी पीठ कुछ अजीब तरह से उभरी हुई थी। मैंने झट-से दूरबीन आँखों पर लगा ली। मैं हैरान रह गया जब देखा कि वो एक छोटा-सा चूज़ा था जो माँ की पीठ पर सैर करने निकला था शायद। मराठी में लिटिल ग्रेब को टिबुकली कहते हैं। तुम्हारी भाषा में भी इसका कोई नाम होगा ही! पता करो। और न पता कर पाओ तो अपना कोई नाम दे दो...

चित्र पहेली
दाएँ से बाएँ
ऊपर से नीचे

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र./261/भोपाल/2015-17

हमने पकाई है एक डायरी... तुम्हारे लिए!

आकर्षक चित्रों से सजे-धजे डेढ़ सौ पन्ने

इसका नाम है - दुबलीचींटी सबसे आगे थी...

यह डायरी बहुत ही दोस्ताना स्वभाव की है। तुम्हारे पास आते ही तुमसे बातें करेगी...रोज़-रोज़ तुम्हारे ही पड़ोस की नई-नई चीज़ों से, लोगों से मिलवाएगी। तुम्हारे साथ चाँद-तारे निहारेगी। तुम्हें चित्र बनाने के लिए नए-नए विषय सुझाएगी। कई बातें होंगी जो तुम अब तक किसी को नहीं बताते होगे...तुम इस डायरी से साझा कर सकते हो।

नए साल की इस डायरी को मँगाने के लिए सम्पर्क करें -

एकलव्य

ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी
शिवाजी नगर, भोपाल - 462016 (म.प्र.)
फोन - 09425010115, 0755 - 2671017, 4252927
email - chakmak@eklavya.in, pitara@eklavya.in www.chakmak.eklavya.in www.eklavya.in

कीमतः 150 रुपए
डाक खर्च अतिरिक्त
10 से अधिक प्रतियों का डाक खर्च हम देंगे
भुगतान एकलव्य के नाम से बने चैक/मनिऑर्डर/ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोनः 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादकः सुशील शुक्ल